जगजयवंत

जीरावला

श्री जीरावला पार्श्वनाथ तीर्थ का इतिहास

भूषण शाह

श्री जीरावला पार्श्वनाथ भगवान

श्री जीरावला पार्श्वनाथ दादा
की स्तुति

जे जीर्ण करता अशुभ भावो क्षणमहीं सहु भव्य नां
सहु सुरिवरो जस ध्यान थी इच्छित कार्यो साधता
ने प्रतिष्ठादिक कार्य जेह्ना नाम मंत्र थी सिद्धता
जीरावला प्रभु पार्श्व ने भावे करुं हुं वंदना...

॥ ऊँ ह्रीं श्रीं श्री जीरावला पार्श्वनाथ रक्षां कुरु कुरु स्वाहा ॥

॥ जैन शासन जयकारा ॥

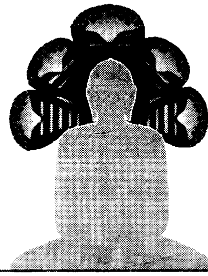

॥ जगजयवंत जीरावला ॥

(श्री जीरावला पार्श्वनाथ तीर्थ का इतिहास)

देवलोक से दिव्य सानिध्य –

प.पू. गुरुदेव श्री जम्बूविजयजी महाराज

मार्गदर्शन –

डॉ. प्रीतमबेन सिंघवी

संपादक –

भूषण शाह

प्रकाशक/प्राप्ति स्थान

मिशन जैनत्व जागरण

'जंबूवृक्ष' सी/504, श्री हरि अर्जुन सोसायटी,
चाणक्यपुरी ओवर ब्रिज के नीचे,
प्रभात चौंक के पास, घाटलोडीया
अहमदाबाद -380061
मो. 09601529519, 9429810625
E-mail - shahbhushan99@gmail.com

मूल्य - 50/- रुपये

"ग्रंथ समर्पणम्"

आपश्री के परमसान्निध्य ने मुझे
जीरावला दादा से जुड़ने का अवसर दिया....

आपश्री के परमसान्निध्य ने मुझे
नई राह दिखाई....

आपश्री के परमसान्निध्य में मुझे
चौथे आरे का एहसास हुआ...

ऐसे मेरे परमोपकारी

प.पू. दीक्षा दानेश्वरी आ. भ. गुणरत्नसूरिजी महाराजा
प.पू. अप्रमत्तयोगी आ. भ. पुण्यरत्नसूरिजी महाराजा
प. पू. प्रवचन प्रभावक आ. भ. यशोरत्नसूरिजी महाराजा
प.पू. युवाहृदय सम्राट आ. भ. रश्मिरत्नसूरिजी महाराजा

आपश्री के करकमलों में प्रस्तुत ग्रंथ

।। सादर समर्पितम् ।।

भूषण शाह

प्रस्तावना

परमात्मा महावीर का पवित्र शासन 21000 साल तक भव्य प्राणियों को कल्याणकर बना रहेगा, इस कल्याणकर शासन की नींव में जैन आगम और जिनबिंब का मुख्य योगदान है। श्रमण भगवंतों के समागम एवं आगम के उपदेशादि पाकर भव्य जीवों को अपने अंधकारमय भवयात्रा में सम्यक्त्वरूपी पवित्र दीप की प्राप्ति हुई और होती रहेगी, उसी तरह जब श्रमण भगवंतों का योग नहीं हो, उस काल में भी अपने सम्यक्त्व को निर्मल रखने में और श्रावकों को शासन की छत्रछाया में टिके रखने में स्वतंत्र रूप से जिन चैत्य, जिनबिंबों का अविस्मरणीय अचिन्त्य उपकार बना रहता है।

किसी भी दर्शन/धर्म की यथार्थता का निर्णय करने हेतु उसके शास्त्र का ऐतिहासिक अवलोकन जरुरी है एवं जिनालय और जिनचैत्य के महात्म्य की पहचान हेतु उनके इतिहास का ज्ञान आवश्यक है। प्राचीन तीर्थों की ऐतिहासिकता का ज्ञान उनकी यथार्थ महिमा जानने हेतु अत्यावश्यक है। स्थापत्य संपत्ति के मूल्य के मुकालबे, तीर्थ का इतिहास अधिक मूल्यवान है। अतः इतिहास का रक्षण अत्यावश्यक कर्त्तव्य है।

प्रस्तुत ग्रंथ में संपादक सुश्रावक श्री भूषण शाह ने शास्त्र दृष्टि से तीर्थ समक्ष को उमदा रीति से प्रदर्शित किया है। संपादक ने अति उत्साह एवं भक्तिभाव से जिनशासन में विशिष्ट स्थान को प्राप्त 'जगजयवंत जीरावला तीर्थ' के पुनः प्रतिष्ठा के शुभावसर पर श्री जीरावला पार्श्वनाथ प्रभु एवं इस तीर्थ के प्राचीनतम इतिहास का संकलन कर ग्रंथारुढ़ किया, यह शासन सेवा आदरणीय एवं अवलंबनीय है। तीर्थ की ऐतिहासिक गरिमा को गाने वाले कई प्रसंग एवं शास्त्रीय उल्लेखों को इकट्ठाकर उन्हें क्रमानुसार करके इतिहास की सुरक्षा का अत्यंत सराहनीय कार्य सम्पन्न किया है।

इस ग्रंथ के अवलोकन से भक्तजनों तथा बुद्धिप्रधान इतिहास प्रेमिओं के हृदय में भी श्रद्धा के बीज अंकुरित होंगे, जिन्हें वे प्रभुभक्ति रूपी जल से सिंचते हुए अंत में मोक्षरूपी फल को प्राप्त करेंगे, यही आशा रखते हुए...

–सूरि गुणरत्नान्तेवासी

– पुण्यरत्नसूरि,

– यशोरत्नसूरि

श्री वरकाणा पार्श्वनाथ जैन तीर्थ, जिला–पाली, राजस्थान
चैत्र सुद 12, वि. सं. 2072, दि. 18–04–2016

अनुक्रमणिका
INDEX

क्र.		पृ. नं.
1.	हृदय की बात....	6
2.	जैन धर्म में तीर्थों का महत्व एवं स्थान	8
3.	जीरावला तीर्थ के प्राचीन मंदिर का विवरण	14
4.	इतिहास के झरोखे में श्री जीरावला पार्श्वनाथ तीर्थ	21
5.	जीरावला तीर्थ की महिमा गाते कुछ वृत्तांत (छ'रि पालक यात्रा संघ उल्लेख व प्राचीन प्रबंध)	31
6.	प्राचीन साहित्य में जीरावला तीर्थ के आलेख...	36
7.	जीरावलाजी तीर्थ से जीरापल्ली गच्छ का सफर...	44
8.	जीरावलाजी तीर्थ से जुड़ी कुछ ऐतिहासिक घटनाएँ	46
9.	जीरापल्ली पार्श्वनाथ तीर्थ का प्रबन्ध...	49

श्री जीरावला पार्श्वनाथ दादा की स्तुति

जे जीर्ण करता अशुभ भावो क्षणमहीं सहु भव्य नां
सहु सुरिवरो जस ध्यान थी इच्छित कार्यो साधता
ने प्रतिष्ठादिक कार्य जेह्ना नाम मंत्र थी सिद्धता
जीरावला प्रभु पार्श्व ने भावे करुं हुं वंदना....

जाप मंत्र .....

1. ॐ ह्रीँ श्रीँ श्री जीरावला पार्श्वनाथ रक्षां कुरु-कुरु स्वाहा।
2. ॐ ह्रीँ श्रीँ अर्हं श्री जीरावला पार्श्वनाथाय ह्रीँ श्रीँ नमः।
3. ॐ ह्रीँ श्रीँ जीरावला पार्श्वनाथाय अट्टे मट्टे दुष्ट विघट्टे नमः स्वाहा।

हृदय की बात....

जगजयवंत श्री जीरावला पार्श्वनाथ स्वामी का माहात्म्य लिखने का शुभ अवसर हमें प्राप्त हुआ, उसका हमें आनंद है। हमारे 'जैन इतिहास' के विषय में चल रहे ऐतिहासिक कार्य के बीच में श्री जीरावला पार्श्वनाथ के संदर्भ में जो-जो बातें जानने को मिली... वह हमने यहाँ प्रगट की हैं.... प्रस्तुत ग्रंथ में इन सभी बातों का उल्लेख मिलेगा... अभी हमें इस तीर्थ का कुछ अप्रगट इतिहास प्राप्त हुआ है जो निम्न है....

- एक मान्यता के अनुसार जीरावला पार्श्वनाथ दादा की मूल प्रतिमाजी जगन्नाथपुरी (ओडीशा) में पूर्व में विराजमान थी। जब अजैनों द्वारा हमले हुए तब जैन श्रावकों ने जान की बाजी लगाकर प्रतिमाजी को बचा लिया। उस समय में जीरावला दादा का प्राचीन तीर्थ एक अन्यधर्मी मंदिर में परिवर्तित हो गया[1]।
- आक्रमण के कारणवश 15वीं से 17 वीं शताब्दी तक जीरावला तीर्थ में मूलनायक के रूप में श्री **महावीरस्वामी** रहे और उसके बाद श्री **नेमनाथ प्रभुजी** रहे... सं. 2020 में प. पू. मु. तिलोकविजयजी म. द्वारा मालवा से लाई हुई अभिनव जीरावला पार्श्वनाथ की प्रतिमाजी स्थापित की गई। जो वर्तमान में 2 प्रतिमाजी हैं वो पूर्व में भोंयरे में स्थापित थीं[2]।
- फिर पुनः प्रतिष्ठा करनी थी... लेकिन योग्य मुहूर्त न होने से पीछे एक कोठड़ी में परोणागत विराजमान कर दी गई।
- जीरावला दादा पार्श्वनाथ प्रभु के समय में ही निर्मित हुए थे, वह परमात्मा की मूर्ति बालू रेत की है और विलेपन किया हुआ है।
- परमात्मा के अधिष्ठायक व नीचे विराजमान पद्मावती देवी की प्रतिमाजी सं. 2020 में विराजमान की होगी, लेख नहीं है.... लेकिन शैली नयी ही है।
- जीरावला तीर्थ में 52 देवरीओं में, अंतिम जीर्णोद्धार के पूर्व भगवान नहीं

---

1. – Jain Shrines in India
   – जैन धर्म का इतिहास–कैलाशचंदजी जैन
2. श्री जीरावला तीर्थ दर्शन।

होंगे, पूर्व में जो होंगे वह खंडित होंगे। क्योंकि ज्यादातर भगवान नए हैं,जो पू. हिमाचलसूरिजी द्वारा प्रतिष्ठित हैं...

- प. पू. तिलोकविजयजी म. ने 7-7 बार चातुर्मास करके जीरावला तीर्थ का जीर्णोद्धार करवाया था। उसकी प्रतिष्ठा सं. 2020 में प. पू. आ. हिमाचल सू. म. के हाथों हुई[1]।
- जीरावला तीर्थ के प्राचीन मंदिर में 8 वीं. शताब्दी से लेकर 15वीं शताब्दी तक के महत्त्वपूर्ण लेख थे[2]।
- जीरावला तीर्थ परमात्मा महावीर का विचरण क्षेत्र भी रहा है...
- प्राचीन मंत्र कल्पों में जीरावला पार्श्वनाथ के कई मंत्र-स्तोत्र आदि मिलते हैं, उसमें खास तो प्रतिष्ठा के समय अभिमंत्रित अष्टगंध व सर्वौषधि चूर्ण से जीरावला पार्श्वनाथ दादा के मूलमंत्र लिखने की विधि मिलती है। जो परंपरा से लिखी जाती है।
- जीरावलाजी तीर्थ में विराजमान पार्श्वनाथ प्रभुजी की मूल प्रतिमाजी पूर्व में दादा के नाम से प्रसिद्ध थी ।

जीरावलाजी तीर्थ का ऐसा ही कुछ प्रगट-अप्रगट इतिहास आपको प्रस्तुत ग्रंथ में मिलेगा.... आशा है कि इस इतिहास की पुस्तिका के द्वारा आप सब प्रतिष्ठा के अवसर पर...जीरावला जी तीर्थ के माहात्म्य से पूर्ण परिचित हो जाएंगे और प्रतिष्ठा के अमूल्य अवसर के साक्षी बनेंगे...

इसी शुभकामना के साथ....

- भूषण शाह

1. श्री जीरावला तीर्थ दर्शन।
2. श्री जीरावला तीर्थ का इतिहास।

जैन धर्म में तीर्थों का महत्त्व एवं स्थान

विश्व में जैन धर्म अपने तीर्थों के कारण एक विशेष महत्त्व रखता है.... यह महत्त्व क्या है ? आपको प्रस्तुत संशोधन से पता चलेगा।

जैनधर्म में तीर्थ का महत्त्व:-

समग्र भारतीय परम्पराओं में 'तीर्थ' की अवधारणा को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है फिर भी जैन परम्परा में तीर्थ को जो महत्त्व दिया गया है वह विशिष्ट है, क्योंकि उसमें धर्म को ही तीर्थ कहा गया है और धर्म प्रवर्तक तथा उपासना एवं साधना के आदर्श को तीर्थंकर कहा गया है। अन्य धर्म परम्पराओं में जो स्थान ईश्वर का है, वही जैन परंपरा में तीर्थंकरों का है जो धर्मरूपी तीर्थ के संस्थापक माने जाते हैं। दूसरे शब्दों में जो तीर्थ अर्थात् धर्म मार्ग की स्थापना करता है, वही तीर्थंकर है। इस प्रकार जैन धर्म में तीर्थ एवं तीर्थंकर की अवधारणाएँ परस्पर जुड़ी हुई है और वे जैन धर्म की प्राण है।

जैनधर्म में तीर्थ का सामान्य अर्थ :-

जैनाचार्यों ने तीर्थ की अवधारणा पर विस्तार से प्रकाश डाला है। तीर्थ शब्द की व्युत्पत्तिपरक व्याख्या करते हुए कहा गया है- 'तीर्यते अनेनेति तीर्थः[1]' अर्थात् जिसके द्वारा पार हुआ जाता है वह तीर्थ कहलाता है। इस प्रकार सामान्य अर्थ में नदी, समुद्र आदि के वे तट जिनसे उस पार जाने की यात्रा प्रारंभ की जाती थी, तीर्थ कहलाते थे; इस अर्थ में जैनागम जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में मागध तीर्थ, वरदाम तीर्थ और प्रभास तीर्थ का उल्लेख मिलता है।[2]

तीर्थ का लाक्षणिक अर्थ :-

लाक्षणिक दृष्टि से जैनाचार्यों ने तीर्थ शब्द का अर्थ लिया जो संसार समुद्र से पार करता है, वह तीर्थ है और ऐसे तीर्थ की स्थापना करने वाले तीर्थंकर हैं। संक्षेप में मोक्ष मार्ग को ही तीर्थ कहा गया है। आवश्यकनिर्युक्ति में श्रुतधर्म, साधना मार्ग, प्रावचन, प्रवचन और तीर्थ- इन पाँचों को पर्यायवाची बताया गया है।[3] इससे यह

1. (अ) अभिधान राजेन्द्र कोष, चतुर्थ भाग, पृ. 2242
   (ब) स्थानांग टीका।
2. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, 3/57,59, 62 (सम्पा. मधुकर मुनि)
3. सुयधम्मतित्थमग्गो पावयणं पवयणं च एगट्ठा।
   सुत्तं तंतं गंतो पाढो सत्थं पवयणं च एगट्ठा।। **विशेषावश्यकभाष्य** – 1378

स्पष्ट होता है कि जैन परम्परा में तीर्थ शब्द केवल तट अथवा पवित्र या पूज्य स्थल के अर्थ में प्रयुक्त न होकर एक व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। तीर्थ से जैनों का तात्पर्य मात्र किसी पवित्र स्थल तक ही सीमित नहीं है। वे तो समग्र धर्ममार्ग और धर्म साधकों के समूह को ही तीर्थ-रूप में व्याख्यायित करते हैं।

तीर्थ का आध्यात्मिक अर्थ :-

जैन धर्म ने तीर्थ के लौकिक और व्युत्पत्तिपरक अर्थ से ऊपर उठकर उसे आध्यात्मिक अर्थ प्रदान किया है। विशेषावश्यकभाष्य में कहा गया है कि सरिता आदि द्रव्य तीर्थ तो मात्र बाह्यमल अर्थात् शरीर की शुद्धि करते हैं, अथवा वे केवल नदी, समुद्र आदि के पार पहुँचाते हैं, अतः वे वास्तविक तीर्थ नहीं है। **वास्तविक तीर्थ तो वह है जो जीव को संसार-समुद्र से उस पार मोक्षरूपी तट पर पहुँचाता है।**[1] विशेषावश्यक-भाष्य में न केवल लौकिक तीर्थस्थलों (द्रव्यतीर्थ) की अपेक्षा आध्यात्मिक तीर्थ (भावतीर्थ) का महत्त्व बताया गया है, अपितु नदियों के जल में स्नान और उसका पान अथवा उनमें अवगाहन मात्र से संसार से मुक्ति मान लेने की धारणा का खण्डन भी किया गया है। भाष्यकार कहते है कि 'दाह की शान्ति, तृषा का नाश इत्यादि कारणों से गंगा आदि के जल को शरीर के लिए उपकारी होने से तीर्थ मानते हो तो अन्य खाद्य, पेय एवं शरीर-शुद्धि करने वाले द्रव्य इत्यादि भी शरीर के उपकारी होने के कारण तीर्थ माने जायेंगे किन्तु इन्हें कोई भी तीर्थरूप में स्वीकार नहीं करता है।'[2] वास्तव में तो तीर्थ वह है जो हमारे आत्मा के क्रोध रूपी दाह, लोभ रूपी तृषा और कर्म रूपी मल को निश्चय से कायम के लिए दूर करके हमें संसार सागर से पार कराता है[*]। जैन परम्परा की तीर्थ

---

1. देहाइतारयं जं बज्झमलावणयणाइमेत्तं च।
णेगंताणच्चंतियफलं च तो दव्वतित्थं तं।।
इह तारणाइफलयंति ण्हाण-पाणा-ऽवगाहणईहिं।
भवतारयंति केई तं नो जीवोवघायाओ।। **विशेषावश्यकभाष्य** - 1028-1029

2. देहोवगारि वा देण तित्थमिह दाहनासणाईहिं।
महु-मज्ज-मंस-वेस्सादओ वि तो तित्तमावन्नं।। **विशेषावश्यकभाष्य**- 1031

*. जं नाण-दंसण-चरितभावओ तव्विवक्खभावाओ।
भव भावओ य तारेइ तेणं तं भावओ तित्थं।।
तह कोह-लोह-कम्ममयदाह-तण्हा-मलावणयणाइं।
एगंतेणच्चंतं च कुणइ य सुद्धिं भवोघाओ।। **विशेषावश्यकभाष्य**- 1033-1036

की यह अध्यात्मपरक व्याख्या हमें वैदिक परम्परा में भी उपलब्ध होती है। उसमें कहा गया है – 'सत्य तीर्थ है, क्षमा और इन्द्रिय-निग्रह भी तीर्थ है। समस्त प्राणियों के प्रति दयाभाव, चित्त की सरलता, दान, सन्तोष, ब्रह्मचर्य का पालन, प्रियवचन, ज्ञान, धैर्य और पुण्य कर्म ये सभी तीर्थ हैं।[1]

द्रव्य तीर्थ और भावतीर्थ :-

जैनों ने तीर्थ के जंगमतीर्थ और स्थावरतीर्थ ऐसे दो विभाग भी किये हैं,[2] भावतीर्थ और द्रव्यतीर्थ भी कह सकते हैं। वस्तुतः नदी, सरोवर आदि तो जड़ या लौकिक द्रव्य तीर्थ हैं, जबकि सम्यग् दर्शन की शुद्धि आदि में निमित्त भूत कल्याणक भूमियाँ, साधना भूमियाँ तथा विशिष्टाजिन प्रतिमाएँ वाले जिनमंदिर वगैरह लोकोत्तर द्रव्य तीर्थ है। श्रुतविहित मार्ग पर चलने वाला संघ भावतीर्थ है और वही जंगम तीर्थ है। उसमें साधुजन पार कराने वाले हैं, ज्ञानादि रत्नत्रय नौका-रूप तैरने के साधन हैं और संसार समुद्र ही पार करने की वस्तु है। जो ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि के द्वारा अज्ञानादि सांसारिक भावों से पार पहुचाता है, वो ही भावतीर्थ हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि जैन परंपरा में आत्मशुद्धि की साधना और जिस संघ में स्थित होकर यह साधना की जा सकती है, वह संघ ही वास्तविक तीर्थ माना गया है। एवं उसमें सहायक स्थल ही स्थावर तीर्थ माने गये हैं।

भगवती सूत्र में तीर्थ की व्याख्या करते हुए स्पष्ट रूप से साधकों के वर्ग को भी तीर्थ कहा गया है कि चतुर्विध श्रमणसंघ ही तीर्थ है।[3] श्रमण, श्रमणी, श्रावक और श्राविकायें इस चतुर्विध श्रमणसंघ के चार अंग हैं। इस प्रकार यह सुनिश्चित है कि प्राचीन जैन ग्रंथों में तीर्थ शब्द को संसार समुद्र से पार कराने वाले साधक के

---

1. सत्यं तीर्थ क्षमा तीर्थ तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः।
सर्वभूतदयातीर्थ सर्वत्रार्जवमेव च।।
दानं तीर्थ दमस्तीर्थ संतोषस्तीर्थमुच्यते।
ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता।।
तीर्थानामपि तत्तीर्थ विशुद्धिमनसः परा। **शब्दकल्पद्रुम – 'तीर्थ', पृ 626**

2. भावे तित्थं संघो सुयविहियं तारओ तहिं साहू।
नाणाइतियं तरणं तरियव्वं भवसमुद्दो यं।। **विशेषावश्यकभाष्य– 1031**

1. तित्थं भंते तित्थं तित्थगरे तित्थं ? गोयमा ! अरहा ताव णियमा तित्थगरे, तित्थं पुण चाउव्वणाईणे समणसंघे। तं जहा–समणा, समणीओ, सावया सावियाओ य।

भगवतीसूत्र, शतक 20, उद्दे. 8

रूप में ग्रहीत करके त्रिविध साधना मार्ग और उसका अनुपालन करने वाले चतुर्विध श्रमणसंघ को ही वास्तविक भाव तीर्थ माना गया है।

इस प्रकार श्रीसंघ रूपी 'जंगम' या 'भावतीर्थ' पर विचारणा करने के बाद हम लोकोत्तर द्रव्य या स्थावर तीर्थ के विषय में विचारणा करेंगे। क्योंकि स्थावर तीर्थ स्वरूप जीरावला तीर्थ के इतिहास को उजागर करना ही इस ग्रंथ का मुख्य उद्देश्य है।

हिन्दू और जैनतीर्थ की अवधारणाओं में मौलिक अन्तर–

हिन्दू परम्परा नदी, सरोवर आदि को स्वतः पवित्र मानती है, जैसे – गंगा। यह नदी किसी ऋषि–मुनि आदि के जीवन की किसी घटना से सम्बन्धित होने के कारण नहीं, अपितु स्वतः ही पवित्र है। ऐसे पवित्र स्थल पर स्नान, पूजा अर्चना, दान पुण्य एवं यात्रा आदि करने को एक धार्मिक कृत्य माना जाता है। इसके विपरीत जैन परम्परा में तीर्थ स्थल को अपने आप में पवित्र नहीं माना गया, अपितु यह माना गया कि तीर्थंकर अथवा अन्य त्यागी–तपस्वी महापुरुषों के जीवन से सम्बन्धित होने के कारण वे स्थल पवित्र बने हैं। जैनों के अनुसार कोई भी स्थल अपने आप में पवित्र या अपवित्र नहीं होता, अपितु यह किसी महापुरुष से सम्बद्ध होकर या उनका सान्निध्य पाकर पवित्र माना जाने लगता है, यथा–कल्याणक भूमियाँ; जो तीर्थंकर के जन्म, दीक्षा, कैवल्य या निर्वाणस्थल होने से पवित्र मानी जाती है। बौद्ध परम्परा में भी बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित स्थलों को पवित्र माना गया है।

हिन्दू और जैन परम्परा में दूसरा महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि जहाँ हिन्दू परम्परा में प्रमुखतया नदी–सरोवर आदि को तीर्थ रूप में स्वीकार किया गया है वहीं जैन परम्परा में सामान्यतया किसी नगर अथवा पर्वत को ही तीर्थस्थल के रूप में स्वीकार किया गया । यह अन्तर भी मूलतः तो किसी स्थल को स्वतः पवित्र मानना या किसी प्रसिद्ध महापुरुष के कारण पवित्र मानना–इसी तथ्य पर आधारित है। पुनः इस अन्तर का एक प्रसिद्ध कारण यह भी है – जहाँ हिन्दू परम्परा में बाह्य शौच (स्नानादि शारीरिक शुद्धि) की प्रधानता थी, वहीं जैन परम्परा में तप और त्याग द्वारा आत्मशुद्धि की प्रधानता थी, केवल देह की विभूषा के लिये किये जाने वाले स्नानादि तो वर्ज्य ही माने गये थे। अतः यह स्वाभाविक था कि जहाँ हिन्दू परम्परा में नदी–सरोवर तीर्थ रूप में विकसित हुए, वहाँ जैन परम्परा में साधना–

स्थल के रूप में वन-पर्वत आदि तीर्थों के रूप में विकसित हुए। यद्यपि अपवादिक रूप में हिन्दू परम्परा में भी कैलाश आदि पर्वतों को तीर्थ माना गया, वहीं जैन परम्परा में शत्रुंजय नदी आदि को पवित्र या तीर्थ के रूप में माना गया है, किन्तु यह इन परम्पराओं के पारस्परिक प्रभाव का परिणाम था। पुनः हिन्दू परम्परा में जिन पर्वतीय स्थलों जैसे कैलाश आदि को तीर्थ रूप में माना गया उसके पीछे भी किसी देव का निवास स्थान या उसकी साधनास्थली होना ही एकमात्र कारण था, किन्तु यह निवृत्तिमार्गी परम्परा का ही प्रभाव था।

मूल आगम, व्याख्या साहित्य और ऐतिहासिक संसोधनों के आलोक में (तीर्थ और तीर्थ यात्रा)

जैन परम्परा में भी तीर्थंकरों की कल्याणक भूमियों को पवित्र स्थानों के रूप में मान्य करके तीर्थ की अवधारणा का विकास हुआ। आगमों में तीर्थंकरों की चिता की भस्म एवं अस्थियों को क्षीरसमुद्रादि में प्रवाहित करने तथा देवलोक में उनके रखे जाने के उल्लेख मिलते हैं। उनमें अस्थियों एवं चिता भस्म पर चैत्य और स्तूप के निर्माण के उल्लेख भी मिलते हैं। जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति में ऋषभदेव भगवान के निर्वाण-स्थल पर स्तूप बनाने का उल्लेख है।[1] उसी तरह चौद पूर्वीओं द्वारा रचित जीवाजीवाभिगम आगम में हमें देवलोक एवं नन्दीश्वर द्वीप में शाश्वत चैत्य आदि के उल्लेखों के साथ-साथ यह भी वर्णन मिलता है कि पर्व तिथियों में देवता नंदीश्वरद्वीप जाकर महोत्सव आदि मनाते हैं।[2]

लोहानीपुर और मथुरा में उपलब्ध जिन-मूर्तियों, अयागपटों, स्तूपांकनों तथा पूजा के निमित्त कमल लेकर प्रस्थान आदि के अंकनों से यह तो निश्चित हो जाता है कि जैन परंपरा में चैत्यों के निर्माण और जिन प्रतिमाँ के पूजन की परंपरा ई. पू. की तीसरी शताब्दी में भी प्रचलित थी।

तीर्थ और तीर्थयात्रा सम्बन्धी उल्लेख निर्युक्ति, भाष्य और चूर्णी साहित्य में भी उपलब्ध होते हैं। आचारांग निर्युक्ति में अष्टापद, उर्जयन्त, गजाग्रपद, धर्मचक्र और अहिच्छात्रा को वंदन किया गया है।[2] इससे स्पष्ट होता है कि निर्युक्ति काल में

1. (अ) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति 2/111 (लाडनूं), (ब) आवश्यक निर्युक्ति 45, (स) समवायांग 35।3
1. जीवाजीवाभिगम तच्चा चुउव्विह पडिवत्ती सू. 183
2. अट्ठावय उज्जिंते गयग्गपए धम्मचक्के य।
पासरहावतनगं चमरुप्पायं च वंदामी। आचारांगनिर्युक्ति - पत्र 18

भी तीर्थ स्थलों के दर्शन, वंदन एवं यात्रा की अवधारणा स्पष्ट रूप से थी और इसे पुण्य कार्य माना जाता था। **निशीथचूर्णी में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि तीर्थंकरों की कल्याणक भूमियों की यात्रा करने से दर्शन की विशुद्धि होती है, अर्थात् व्यक्ति की श्रद्धा पुष्ट होती है।**[1]

इस प्रकार जैनों में तीर्थंकरों की कल्याणक-भूमियों को तीर्थ रूप में स्वीकार कर उनकी यात्रा के स्पष्ट उल्लेख आगमिक साहित्य में भी मिलता है। कल्याणक भूमियों के अतिरिक्त वे स्थल, जो मंदिर और मूर्तिकला के कारण प्रसिद्ध हो गये थे, उन्हें भी तीर्थ के रूप में स्वीकार किया गया है और उनकी यात्रा एवं वन्दन को भी बोधिलाभ और निर्जरा का कारण माना गया है। निशीथचूर्णी में तीर्थंकरों की जन्म कल्याणक आदि भूमियों के अतिरिक्त उत्तरापथ में धर्मचक्र, मथुरा में देवनिर्मित स्तूप और कोशल की जीवितस्वामी की प्रतिमा को पूज्य बताया गया है।[2]

इस प्रकार वे स्थल, जहाँ कलात्मक एवं भव्य मंदिरों का निर्माण हुआ अथवा जहाँ जिन-प्रतिमा चमत्कारी हो अथवा परम प्रशमरस से भक्तजनों को साक्षात् तीर्थंकर की प्रतीति कराती हो, ऐसे प्राचीन अथवा एकान्त स्थान स्थित मंदिर भी तीर्थ रूप में माने जाते हैं।

सच्चे भाव से की गई तीर्थ यात्रा मूलतः पुण्य व निर्जरा का कारण बनती है.... अतः आईये इस तीर्थयात्रा के द्वारा हम भी पुण्य व निर्जरा को प्राप्त करें।

3. निशीथ चूर्णी , भाग 3, पृ. 24
4. उत्तरावहे धम्मचक्कं, महुर ए देवणिम्मिय थूभो कोसलाए व जियंतपडिमा, तित्थकराण वा जम्भूमीओ। निशीथचूर्णी, भाग-3, पृ-79

जीरावला तीर्थ के प्राचीन मंदिर का विवरण

जीरावला तीर्थ में देवाधिष्ठीत अति प्राचीन जैन मंदिर था... यह मंदिर पार्श्वनाथ भगवान की शक्ति पीठ जैसा यंत्राकारमय था... इस मंदिर को कहीं से आकाश मार्ग से लाया गया हो ऐसी किंवदन्ती है.... मंदिर के सं. 2001 के बाद जब आमूलचूल जीर्णोद्धार हेतु उतारा गया तब मंदिर की नींव नहीं निकली यह इस बात को पूर्ण रूप से पुष्ट करता है।

प्राचीन मंदिर का वृत्तांत –

सन् 2001 से पूर्व 54 देहरी से युक्त एक अति प्राचीन मंदिर यहाँ शोभायमान था। इस मंदिर की निम्नलिखित विशेषताएँ थी। आइए प्राचीन मंदिर की भावयात्रा करें....

मंदिर के बाएँ हाथ की तरफ से चबूतरे के पास सं. 1851 का शिलालेख है इसमें आचार्य रंगविमलसूरि का नाम है एवं एक बड़े जीर्णोद्धार का उल्लेख है। उन्होंने उस समय यात्रार्थ आए संघ को उपदेश देकर रू. 30211/- का खर्च करवाकर शिखर का जीर्णोद्धार करवाया था। अब चलिये अन्दर। प्रवेश करते ही दरवाजे के अन्दर लोहे की जाली के पास तीन शिलालेखों के अंश हैं। एक में तो केवल एक पंक्ति है, उसके नीचे सं. 1511 का उल्लेख पढ़ने में आता है। तीसरा जाली के पास दो भागों में विभक्त है उसका सं. पढ़ने में नहीं आता । सामने है खेला मंडप इसके गुम्बज में सुनहरी चित्रकारी है। यहीं पर पूजा आदि के समय भक्त मण्डली अपनी संगीत लहरी से सबका मन मोह लेते हैं। शृङ्गार चौकी, इसके थम्बों पर भी सुनहरी काम है। यहीं पर सामने बाएँ हाथ तरफ शत्रुंजय महातीर्थ का एवं दाएँ हाथ की तरफ तीर्थाधिराज सम्मेतशिखर के पट उत्कीर्ण हैं। गूढ मंडप में बाईं तरफ ये पाश्र्वयक्ष हैं एवं दाईं तरफ पद्मावती देवी हैं। इनकी मनोहर मूर्तियाँ मनवांछित फल प्रदान करने वाली हैं। मुख्य गम्भारे के प्रवेश द्वार के पास दाएँ बाएँ दोनों तरफ श्यामवर्ण की भगवान पार्श्वनाथ की भव्य प्रतिमाएँ हैं। सामने ही प्रभासन पर मूलनायक भगवान पार्श्वनाथ के दोनों ओर पार्श्वनाथ भगवान की ही मूर्तियाँ हैं। मूलनायकजी की प्रतिष्ठा सं. 2020 वैशाख सुदि 6 सोमवार को नाकोड़ा तीर्थोद्धारक श्री हिमाचलसूरीश्वरजी एवं तिलोकविजयजी महाराज साहब द्वारा हुई थी। उसके पूर्व यहाँ नेमिनाथ भगवान की मूर्ति प्रतिष्ठित थी। ये नेमिनाथ भगवान अब मुख्य मंदिर से लगी दो देहरियों में से एक में प्रतिष्ठित हैं। मंदिर से

लगी इस पहली देवकुलिका में इस तीर्थ के अधिपति भगवान जीरावला पार्श्वनाथ की प्राचीन दो मूर्तियाँ हैं। एक तो बहुत प्राचीन है एवं दूसरी उसकी अनुकृति बाद की बनाई हुई है। इनके नीचे पद्मावती देवी की खड़ी प्रतिमा है। लोग यहीं पर अपनी मनौतियाँ पूरी करते हैं। पास की दूसरी देहरी में भगवान नेमिनाथ की मूर्ति प्रतिष्ठित है जो लगभग 200 वर्ष तक इस तीर्थ के मूलनायक रहे। यह कहा जाता है कि यह मूर्ति जीरावला एवं वरमाण के बीच ऊंडावाला के पास के नांदला नाम के बड़े पत्थर के पास वाले खेत से प्रकट हुई थी।

भमती की देवकुलिकाओं की एक विशेषता यह है कि इन देहरियों में भारत भर के प्रसिद्ध पार्श्वनाथ बिम्बों की स्थापना है।

इस प्रथम देहरी में जीरावला पार्श्वनाथ व मुनिसुव्रत स्वामी प्रतिष्ठित हैं। मुनिसुव्रत स्वामी की मूर्ति काले पत्थर की है एवं बड़ी सुन्दर है।

इस दूसरी देवकुलिका में दादा पार्श्वनाथ पंचासरा पार्श्वनाथ तथा कल्याण पार्श्वनाथ प्रतिष्ठित हैं, इस देहरी पर सं. 1481 का एक लेख है जिसमें आचार्य रत्नसिंहसूरि का उल्लेख है, 1481 के लेख बहुत सी देहरियों पर हैं उनमें अलग-अलग आचार्यों के नाम आए हैं। शायद तब भी जीरावला की मान्यता बहुत रही होगी अतः दूर-दूर के आचार्य इसके जीर्णोद्धार के लिए धन भिजवाते थे। इस देहरी के जीर्णोद्धार में बीस नगर के प्राग्वाट खेतसी ने रुपये लगाये थे।

तीसरी देहरी पर भी 1481 का लेख है। इसमें अजाहरा पार्श्वनाथ व शान्तिनाथ भगवान प्रतिष्ठित हैं।

इस चौथी देहरी में माणिक्य पाश्र्वनाथ नवखण्डा पार्श्वनाथ व सूरजमंडन पार्श्वनाथ प्रतिष्ठित हैं। इस पर भी सं. 1421 का ही लेख है।

इस पांचवी देहरी में चिन्तामणी पार्श्वनाथ, वरकाणा पार्श्वनाथ व लोद्रवा पार्श्वनाथ प्रतिष्ठित हैं।

छठी देहरी में जगवल्लभ पार्श्वनाथ ,भाभा पार्श्वनाथ एवं मोरैया (मोरिया) पार्श्वनाथ प्रतिष्ठित हैं। इस देहरी पर सं. 1487 पोष सुदी 2 रविवार का लेख है। आचार्य मेरूतुङ्गसूरि के पट्टधर गच्छनायक श्री जयकीर्तिसूरि के उपदेश से इस देवकुलिका का निर्माण या जीर्णोद्धार हुआ था। इन मेरूतुङ्गसूरि ने प्रबन्धचिन्तामणी नाम के ग्रंथ की रचना की थी एवं इन्होंने श्री जीरापल्लि पार्श्वनाथ स्तोत्र की रचना की थी-

इति श्रीजीरिकापल्ली स्वामी पार्श्वजिनः स्तुतः।

श्री मेरूतुङ्गसूरेः स्तात् सर्वसिद्धिप्रदायकः।।

इस सातवीं देवकुलिका में फलोदी पार्श्वनाथ व शान्तिनाथ भगवान प्रतिष्ठित हैं। इसके 1481 के लेख सोमचन्द्रसूरि, मुनि सुन्दरसूरि, जयचन्द्रसूरि, भुवनसुन्दरसूरि के नाम है। आचार्य सोमसुन्दरसूरि का समय 1456 से 1500 वि. का है इन्होंने तारंगा व राणकपुर के मन्दिरों की प्रतिष्ठा की थी। इनके नाम से जैन साहित्य में एक युग माना जाता है, इनके शिष्य मुनिसुन्दरसूरि, जयचन्द्रसूरि एवं भुवनसुन्दरसूरि बहुत विद्वान लेखक व उपदेशक थे। [1]मुनिसुन्दरसूरिजी ने देलवाड़ा में महामारी की शान्ति हेतु संतिकरं स्तवन की रचना की थी एवं रोहिड़ा ग्राम में टिड्डी के उत्पात का शमन किया था। इन्होंने 108 हाथ लम्बा विज्ञप्ति पत्र अपने दादा गुरुदेव सोमसुन्दरसूरि की सेवा में भेजा था। जिनके तीसरे स्तोत्र का गुर्वावली नाम का एक विभाग अभी प्राप्य है जिसमें भगवान महावीर से लेकर सोमसुन्दरसूरि युग तक के तपागच्छ आचार्यों का प्रामाणिक इतिहास है। दूसरे आचार्य जयचंद्रसूरि एवं तीसरे भुवनसुन्दरसूरि बहुत बड़े विद्वान् थे एवं इन्होंने भी कई संस्कृत प्राकृत ग्रंथों की रचना की है।

आठवीं देहरी : इसमें करहेडा पार्श्वनाथ नाकोड़ा (नवकोटि) पार्श्वनाथ एवं कापरड़ा पार्श्वनाथ प्रतिष्ठित हैं। इस पर भी संवत् 1481 का ही लेख है।

नवीं देवकुलिका में मनमोहन पार्श्वनाथ, गोडी पार्श्वनाथ एवं पोसीना पार्श्वनाथ की प्रतिमाएँ विराजित हैं, लेख वही संवत् 1481 का है।

दसवीं देहरी पर लेख संवत् 1483 भाद्रपद कृष्णा 7 गुरुवार का है इसमें नेमिनाथजी, पार्श्वनाथजी एवं मल्लिनाथजी की दो प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं। ग्यारहवीं से 19 वीं देवकुलिकाओं पर भी इसी संवत् के लेख हैं, इसमें कलिकुण्ड पार्श्वनाथ एवं कल्याण पार्श्वनाथ की प्रतिमाएँ हैं। बारहवीं देहरी में शीतलनाथ, पार्श्वनाथ, मुनिसुव्रत स्वामी व शान्तिनाथ भगवान की प्रतिमाएं हैं।

तेरहवीं देहरी में पद्मप्रभ, भीड़भंजन पार्श्वनाथ व नेमिनाथ भगवान की प्रतिमाएँ हैं। चौदहवीं देहरी के बीच के गोखले में मुनिसुव्रतस्वामी की प्रतिमा वि. सं. 1486 से प्रतिष्ठित है। चौदहवीं देहरी में आदीश्वर पार्श्वनाथ (श्यामवर्ण) एवं नाग रहित पार्श्वनाथ की प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं। पन्द्रहवीं देहरी में अवन्तिपार्श्वनाथ,

1. सोम सौभाग्य सर्ग 10 श्लोक 67-71

अंतरिक्ष पार्श्वनाथ एवं पोसीना पार्श्वनाथ की सुन्दर मूर्तियाँ विराजमान हैं। सोलहवीं देहरी का लेख संवत् घिस गया है पर यह ज्ञात होता है कि यह देहरी आदिनाथ भगवान की थी एवं इसकी प्रतिष्ठा में आचार्य हीरसूरिजी का नाम आया है पर वर्तमान में इसमें श्यामवर्ण पार्श्वनाथ, श्वेतवर्ण पार्श्वनाथ एवं श्यामवर्ण पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं।

सत्रहवीं देहरी में नवलखा पार्श्वनाथ, मक्षी पार्श्वनाथ एवं नवपल्लवीया पार्श्वनाथ की प्रतिमाएं हैं।

अट्ठारहवीं देवकुलिका के लेख पर आचार्य जयसिंहसूरि का नाम आया है, जयसिंहसूरिजी अपने समय के महान आचार्य हुए हैं। इस देहरी में इस समय शान्तिनाथजी, पार्श्वनाथजी एवं चंद्रप्रभुजी की सुन्दर मूर्तियाँ हैं। जयसिंहसूरिजी ने भरूच के प्रसिद्ध [1]शकुनिका विहार नामक मुनिसुव्रतस्वामी के मंदिर के लिए तेजपाल से प्रचुर धन प्राप्त किया था। उनकी लिखी हुई मिली यह देवकुलिका तेरहवीं सदी के अन्त की होनी चाहिए। या हो सकता है उनकी शिष्य परम्परा ने इस देवकुलिका के लिए धन प्रदान करने के लिए उपदेश दिया हो। इन जयसिंहसूरिजी ने 'कुमारपाल चरित्र' की रचना की थी एवं ये कृष्णर्षिगच्छ के थे।

19वीं देहरी के लेख पर आचार्य भुवनसुन्दरसूरिजी का नाम आया है ये आचार्य सोमसुन्दरसूरिजी के तीसरे शिष्य थे जो बड़े विद्वान् थे, इस देहरी में इस समय यवलेश्वर पार्श्वनाथ, श्री वरेज पार्श्वनाथ तथा गांगाणी पार्श्वनाथ की प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं।

बीसवीं कुलिका पर वि. सं. 1412 का लेख है पर पास के खम्भे पर 1483 का लेख है। ये लेख जीर्णोद्धार के हैं। इक्कीसवीं कुलिका के खम्भों पर 1483 वि. का ही लेख है। इसमें चन्द्रप्रभु, पार्श्वनाथ एवं सम्भवनाथ भगवान की प्रतिमाएँ हैं। बाइसवीं कुलिका में पार्श्वनाथ, सम्मेतशिखर पार्श्वनाथ एवं पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमाएँ हैं।

तेइसवीं कुलिका पर भी 1483 का लेख है, एवं इसमें नगीना पार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ तथा शाचा पार्श्वनाथ विराजमान हैं। चौबीसवीं कुलिका में दो पार्श्वनाथ प्रभु की मूर्तियाँ हैं एवं एक धर्मनाथ भगवान की मूर्ति है। पच्चीसवीं कुलिका में भटेवा पार्श्वनाथ, सांवला पार्श्वनाथ एवं मनवाञ्छितपूरण पार्श्वनाथ प्रतिष्ठित हैं। छब्बीसवीं देहरी में महावीरस्वामी, पार्श्वनाथ एवं शान्तिनाथ भगवान विराजमान

1. बाद में इसे मस्जिद बना दिया गया।

हैं। इस कुलिका के पास पटों की कुलिका है, इसमें सामने तीर्थाधिराज अष्टापदजी का पट है। दाहिने हाथ की तरफ तीर्थराज गिरनार व बाईं तरफ आबूराज के पट हैं। इसके बाद सत्ताइसवीं देहरी में आदीश्वर भगवान, पार्श्वनाथ भगवान एवं धर्मनाथ भगवान विराजित हैं, इसके सामने बराण्डे के खम्भों पर दो लेख हैं। एक पर (सं. 1487 के) आचार्य धर्मशेखरसूरिजी के शिष्य देवचंद्रजी के नित्य प्रणाम का उल्लेख है एवं दूसरे खम्भे पर सहलसुन्दरजी के नित्य वंदन का लेख है। ये देवचंद्रसूरि [1]कासद्रह गच्छ के ज्ञात होते हैं।

अट्ठाइसवीं देवकुलिका पर चार लेख हैं ऊपर के लेख में आ. जिनदत्तसूरिजी का नाम आया है। संवत् पढ़ने में नहीं आता है। इसके नीचे के दूसरे लेख को भी पढ़ा नहीं जा सकता है एवं कुलिका के दोनों तरफ के खम्भों पर संवत् 1487 वि. के लेख हैं जो जीर्णोद्धार के हैं। इस कुलिका में जेरींग पार्श्वनाथ एवं धींगडमल्ला पार्श्वनाथ विराजे हुए हैं।

उन्तीसवीं देवकुलिका पर सं. 1483 की वैशाख सुदि 13 का लेख है इसमें अचलगच्छ के महान् आचार्य मेरूतुङ्गसूरिजी का नाम आया है, जो किसी संघ को लेकर यहाँ पधारे थे। ये मेरूतुङ्गसूरिजी आचार्य महेन्द्रप्रभसूरिजी के शिष्य थे एवं बड़े समर्थ आचार्य थे। इस देवकुलिका में सुपार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ एवं मुनिसुव्रतस्वामी की प्रतिमाएं हैं।

तीसवीं देवकुलिका में महावीरस्वामी, दूधिया पार्श्वनाथ एवं ककडेश्वर पार्श्वनाथ प्रतिष्ठित हैं। इकतीसवीं देहरी में वासुपूज्य स्वामी, पार्श्वनाथ एवं शान्तिनाथ भगवान की प्रतिमाएँ हैं, इस देहरी का जीर्णोद्धार मीठडिया गौत्र के ओसवाल संग्रामजी के पुत्र सलखा के पुत्र तेजा एवं उनकी पत्नी तेजलदेवी के पुत्रों ने करवाया था। उपदेश देने वाले आचार्य थे मेरूतुङ्गसूरिजी के शिष्य जयकीर्तिसूरिजी।

बत्तीसवीं देहरी में वर्तमान में रायण्या पार्श्वनाथ, दुःखभंजन पार्श्वनाथ एवं नाकला पार्श्वनाथ प्रतिष्ठित हैं। इस देहरी का जीर्णोद्धार भी 1483 में हुआ था।

तेतीसवीं कुलिका में पार्श्वनाथ, गाडरिया पार्श्वनाथ एवं आदीश्वर भगवान की मूर्तियाँ हैं। चौतीसवीं देहरी में डोकरिया पार्श्वनाथ, गाडरिया पार्श्वनाथ एवं आदिश्वर भगवान प्रतिष्ठित हैं। पेंतीसवीं कुलिका में भगवान सुमतिनाथ, नाकोड़ा पार्श्वनाथ एवं पार्श्वनाथ भगवान विराजते हैं। पैंतीसवीं कुलिका पर तो 1483 वि.

1. वर्तमान में कासिन्द्रा।

का ही लेख है पर पैंतीसवीं व छत्तीसवीं देहरी के बीच के खम्भों पर संवत् 1233 वि. 1133 वि. 1333 वि. के अवाच्य लेख हैं। छत्तीसवीं देहरी में शान्तिनाथ एवं महावीर स्वामी की दो प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं। अडतीसवीं पर भी वही 1483 का लेख है । पर इसमें पार्श्वनाथ भगवान के दोनों ओर शान्तिनाथ भगवान की प्रतिमाएँ विराजमान हैं। उंचालीसवीं कुलिका में बीच में सम्भवनाथ भगवान के दोनों ओर पार्श्वनाथ भगवान की मूर्तियाँ हैं। इस देहरी के बाहर गोखले में श्रेयांसनाथ भगवान की मूर्ति है । सामने बरामदे के खम्भे पर सं. 1534 का लेख है, जिसमें मालगाँव निवासी सेठ का नाम है।

अब वह कमरा आ गया, जिसमें प्रवेश करते ही पाँच प्रतिमाएँ बाएँ हाथ की तरफ विराजमान हैं। **यहीं दीवार में महान् चमत्कारिक स्वस्तिक यंत्र उत्कीर्ण है।**[1] मंदिर में समय समय पर सुधार होता रहा है पर मन्दिर की प्राचीनता के दर्शन यहीं होते हैं। यहीं पर ये सामने सं. 1685 वि. के दो काउसग्गिए दिखाई देते हैं, इन दाँए-बाँए की आमने-सामने की देहरियों में महावीरस्वामी की प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं। **इस कक्ष में दाहिनी तरफ स्वस्तिक यंत्र के सामने 24 जिनमाताओं का पट है।** इसी कक्ष में संवत् 1525 वि. की धातुप्रतिमा है जिस पर आ. जिनसुन्दरसूरिजी के शिष्य जिनहर्षसूरिजी का नाम है।

चालीसवीं देहरी पर 1483 वि. स्तम्भ लेख के अतिरिक्त 1421 वि. का लेख है जिसमें आचार्य कक्कसूरिजी के शिष्य का नाम आया है। इस देहरी में कलियुग पार्श्वनाथ, श्रीशंखलपुर पार्श्वनाथ एवं नीलकंठ पार्श्वनाथ विराजित हैं।

इकतालीसवीं देहरी पर दो लेख हैं एक सं. 1421 का व दूसरा 1483 का इसका जीर्णोद्धार भुवनसुन्दरजी के उपदेश से हुआ था। इसमें इस समय गेला पार्श्वनाथ, सहस्त्रफणा पार्श्वनाथ तथा दौलतीया पार्श्वनाथ विराजमान हैं। बीयालीसवीं देहरी में आदीश्वर भगवान, सुरसरा पार्श्वनाथ एवं शीतलनाथ भगवान हैं। देहरी पर संवत् 1421 का लेख है जो पढ़ने में नहीं आता। त्रियालीसवीं देहरी पर भी यही लेख है एवं बाजू के खम्भे पर 1483 का लेख है इसमें वर्तमान में श्रेयांसनाथ, पार्श्वनाथ एवं महावीरस्वामी भगवान विराजमान हैं।

पैंतालीसवीं देहरी पर शायद सं. 1413 का लेख है एवं बाजू के खम्भे पर 1483 विक्रमी का ही लेख है। इसमें गोड़ी पार्श्वनाथ, शान्तिनाथ एवं मुज्जपरा पार्श्वनाथ भगवान की मूर्तियाँ हैं। छियालीसवीं कुलिका पर कोई लेख नहीं है।

1. अब यह यंत्र कहाँ है ? यह प्रश्न है.....

इसमें श्वेतवर्ण नाग रहित जीरावला पार्श्वनाथ के दोनों ओर भगवान पार्श्वनाथ की छोटी मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। सेंतालिसवीं कुलिका के लेख पर आचार्य जिनचंद्रसूरिजी का नाम है एवं इसमें जोरवाड़ी पार्श्वनाथ, कम्बोई पार्श्वनाथ एवं चिन्तामणि पार्श्वनाथ प्रतिष्ठित हैं। अडतालीसवीं कुलिका पर सब देहरियों के लेखों से भिन्न सं. 1484 वि. का लेख है एवं आचार्य श्री हैं उदयचंद्रसूरि। इसमें श्री मण्डेरा पार्श्वनाथ, श्री अजितनाथ एवं पद्मप्रभ की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं।

उंचासवीं देहरी पर 1412 वि. का लेख है एवं इसके आचार्य हैं विजयशेखर सूरिजी के शिष्य रत्नाकरसूरिजी। इस देहरी में वर्तमान में श्री नेमनाथ भगवान व श्रीघृतकल्लोल पार्श्वनाथ की प्रतिमाएँ हैं, पचासवीं देहरी में कापली पार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ व ईश्वरा पार्श्वनाथ की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। इक्यावनवीं देहरी में अमीझरा पार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ व पोशीना पार्श्वनाथ भगवान हैं।

इस अंतिम देहरी पर दो लेख हैं ऊपर 1483 वि. का एवं खम्भे पर 1481 का, ये लेख जीर्णोद्धार के ही हैं। इसमें महावीरस्वामी एवं शेरीशा पार्श्वनाथ भगवान की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं।

इस प्राचीन मंदिर में कई महत्व के शिला लेख व प्रतिमाएँ बिराजमान हैं।

आज ये सब लेख कहाँ हैं, यश शोध का विषय है। अब नूतन मन्दिर में यह सब लेख पुनः प्रतिष्ठित किए जाएँ यह भावना है।

इतिहास के झरोखे में श्री जीरावला पार्श्वनाथ तीर्थ

जैन शास्त्रों में जीरावला पार्श्वनाथ प्रभु का जगह–जगह महत्व बतलाया गया है। इतिहास जानने से हमें पता लगेगा की जीरावला पार्श्वनाथ दादा व जीरावलाजी तीर्थ जैन धर्म का प्राण रहा है।

आईए... नजर करते हैं... तीर्थ के इतिहास पर...करते हैं भावयात्रा...

मंदिर अरावली पर्वतमाला की जीरापल्ली नाम की पहाड़ी की गोद में बसा हुआ है। यह बहुत ही प्राचीन मंदिर है। हरे–भरे जंगलों से घिरा हुआ यह मंदिर अपनी भव्यता के लिये प्रसिद्ध है। सदियों से यह आचार्यों और धर्मनिष्ठ व्यक्तियों का शरण स्थल रहा है। यह जैन धर्म का सांस्कृतिक और धार्मिक केन्द्र रहा है। इसके पाषाणों पर अंकित लेख इसकी प्राचीनता और गौरव की गाथा गा रहे हैं। हर वर्ष हजारों की संख्या में श्रद्धालु भक्तजन इस मंदिर के दर्शन करके प्रेरणा और शक्ति का अर्जन करते हैं।

आज भी प्रतिष्ठा, शान्तिस्नात्र आदि शुभ क्रियाओं के प्रारंभ में 'ॐ ह्रीँ श्रीँ श्री जीरावला पार्श्वनाथाय रक्षां कुरु कुरु स्वाहा।' पवित्र मन्त्राक्षर रूप इस तीर्थाधिपति का स्मरण किया जाता है। इस तीर्थ की महिमा इतनी प्रसिद्ध है कि मारवाड़ में घाणेराव, नाडलाई, कच्छ, नाडोल, सिरोही एवं मुंबई के घाटकोपर आदि स्थानों में जीरावला पार्श्वनाथ भगवान की स्थापना हुई है।

जैन शास्त्रों में इस तीर्थ के कई नाम हैं, जैसे – जीरावल्ली, जीरापल्ली, जीरिकापल्ली एवं जयराजपल्ली पर इसका नाम करण हमारी मान्यतानुसार इसके पर्वत जयराज पर ही हुआ है। जयराज की उपत्यका में बसी नगरी जयराजपल्ली। श्री जिनभद्रसूरिजी के शिष्य सिद्धान्तरूचिजी ने श्री जयराजपुरीश श्री पार्श्वनाथ स्तवन की रचना की है। इसी जयराजपल्ली का अपभ्रंश रूप आज जीरावला नाम में दृष्टिगोचर हो रहा है।

सिरोही शहर में 35 मील पश्चिम की दिशा में और भीनमाल से 30 मील दक्षिण पूर्व दिशा में जीरावला ग्राम में यह मंदिर स्थित है। यह मरु प्रदेश का अंग रहा है। प्राचीनकाल में जीरावला एक बहुत बड़ा और समृद्धशाली नगर था। सांस्कृतिक दृष्टि से भी यह नगर बहुत समृद्ध था। यह देश–परदेश के व्यापारियों के आकर्षण का केन्द्र रहा है और शूरवीरों की जन्म और कर्म भूमि रहा है। जीरावला

का एक अपना विशिष्ट इतिहास है जिसकी झलक तीर्थमालाओं एवं प्राचीन स्तोत्रों के माध्यम से मिलती है।

जनश्रुति है कि इस भूमि पर महावीरस्वामी ने विचरण किया है। भीनमाल में वि. सं. 1333 के मिले लेख से इसकी पुष्टि होती है। चन्द्रगुप्त मौर्य के भारतीय राजनीति के रंगमंच पर प्रवेश करने पर यह मौर्य साम्राज्य के अधीन था। अशोक के नाति सम्प्रति के शासनारूढ होने पर यह प्रदेश उसके राज्य के अधीन था। उसके समय में जैन धर्म की बहुत उन्नति हुई। तथा कई जैन मंदिरों के निर्माण का उल्लेख मिलता है। इतिहासकार ओझाजी ने विक्रम संवत की दूसरी शताब्दी के मिले शिलालेखों के आधार पर कहा है कि यहाँ पर राजा संप्रति के पहले भी जैन धर्म का प्रचार था। मौर्यों के पश्चात् क्षत्रपों का इस प्रदेश पर अधिकार था। महाक्षत्रप रूद्रदामा के जूनागढ़ वाले शिलालेख से यह ज्ञात होता है कि यह मरु राज्य सन् 553 ई. में उसके राज्य के अन्तर्गत था।

जीरावला पार्श्वनाथ मंदिर वि. सं. 326 में कोडीनगर के सेठ ने बनाया था। यह कोडीनगर शायद आज के भीनमाल के पास स्थित कोडीनगर ही है, जो काल के थपेड़ों से अपने वैभव को खो चुका है। कोडीनगर तट पर सिन्धु घाटी की सभ्यता के अवशेष प्राप्त हो सकते हैं।

ऐसी जनश्रुति है कि इस मंदिर की पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा जमीन में से निकली है। इसका वृत्तान्त इस प्रकार मिलता है– 'एक बार कोडी ग्राम सेठ अमरासा को स्वप्न आया। स्वप्न में उन्हें भगवान पार्श्वनाथ के अधिष्ठायक देव दिखे। उन्होंने सेठ को जीरापल्ली शहर के बाहर धरती के गर्भ में छिपी हुई प्रतिमा को स्थापित करने के लिये कहा। यह प्रतिमा गाँव के बाहर की एक गुफा में जमीन के नीचे थी। अधिष्ठायक देव ने सेठ अमरासा को इस भूमि स्थित प्रतिमा को उसी पहाड़ी की तलहटी में स्थापित करने को कहा। सुबह उठने पर सेठ ने स्वप्न की बात जैनाचार्य देवसूरीश्वरजी, जो कि उस समय वहाँ पर पधारे हुए थे, को बतायी। आचार्य देवसूरिजी को भी इसी तरह का स्वप्न आया था। अब यह बात सारे नगर में फैल गई और नगरवासी इस मूर्ति को निकालने के लिए उतावले हो गये। आचार्य देवसूरि और सेठ अमरासा निर्दिष्ट स्थान पर गये और बड़ी सावधानी से उस मूर्ति को निकाला। प्रतिमा के निकलने की खबर सुनकर आसपास के क्षेत्रों के लोग भगवान के दर्शन के लिये उमड़ पड़े। कोडीनगर और जीरापल्ली के श्रावकों में उस प्रतिमा को अपने-अपने नगर में ले जाने के लिये होड़ लग गई। परन्तु आचार्य

देवसूरिजी ने अधिष्ठायकदेव की आज्ञा का पालन करते हुए प्रतिमा को जीरापल्ली में ही स्थापित करने का निश्चय किया। विक्रम सं. 331 में आचार्य देवसूरि ने इस प्रतिमा की प्रतिष्ठा की। विक्रम सं. 663 में प्रथम बार इस मंदिर का जीर्णोद्धार हुआ। जीर्णोद्धार कराने वाले थे सेठ जेतासा खेमासा। वे 10 हजार व्यक्तियों का संघ लेकर श्री जीरावला पार्श्वनाथ भगवान के दर्शन के लिये आये थे। मंदिर की बुरी हालत को देख कर उन्होंने जैन आचार्य श्री मेरूसूरीश्वरजी महाराज, जो उन्हीं के साथ आये थे, को इस मंदिर का जीर्णोद्धार करने की इच्छा प्रकट की, आचार्य श्री ने इस पुनीत कार्य के लिये उन्हें अपनी आज्ञा प्रदान कर दी।

चौथी शताब्दी में यह प्रदेश गुप्त साम्राज्य के अन्तर्गत था। गुप्तों के पतन के पश्चात यहाँ पर हूणों का अधिकार रहा। हूणों के सम्राट तोरमाण ने गुप्त साम्राज्य को नष्ट कर अपना प्रभाव यहाँ पर स्थापित किया। हूण राजा मिहिर कुल और तोरमाण के सामन्तों द्वारा बनाये हुए कई सूर्य मंदिर जीरावला के आसपास के इलाकों में आये हुये हैं। जिनमें वरमाण, करोडीध्वज (अनादरा), हाथल के सूर्य मंदिर प्रसिद्ध हैं। हाथल का सूर्य मंदिर तो टूट चुका है, पर करोडीध्वज और वरमाण के सूर्य मंदिरों की प्रतिष्ठा आज भी अक्षुण है। वरमाण का सूर्य मंदिर तो भारतवर्ष के चार प्रसिद्ध सूर्य मंदिरों में से एक है।

गुप्तकाल के जैनाचार्य हरिगुप्त तोरमाण के गुरु थे। इनके शिष्य देवगुप्तसूरि के शिष्य शिवचंद्रगणि महत्तर ने इस मंदिर की यात्रा की। उद्योतनसूरि कृत '[1]कुवलयमाला प्रशस्ति' के अनुसार, शिवचंद्रगणि के शिष्य यक्षदत्तगणि ने अपने प्रभाव से यहाँ पर कई जैन मंदिरों का निर्माण करवाया। वल्लभीपुर के राजा शीलादित्य को जैन धर्म में दीक्षित करने वाले आचार्य धनेश्वरसूरि ने इस मंदिर की यात्रा की। यक्षदत्त गणि के एक शिष्य वटेश्वरसूरि ने आकाशवप्र के नगर में एक रम्य जैन मंदिर का निर्माण करवाया, जिनके दर्शन मात्र से लोगों का क्रोध शान्त हो जाता था। आकाशवप्र का अर्थ होता है आकाश को छूने वाले पहाड़ का उतार। जीरावला का यह मंदिर भी आकाश को छूने वाले पर्वत के उतर पर स्थित है और एक ऐसी किंवदन्ती है कि जीरावला का यह मंदिर आकाश मार्ग से यहाँ लाया गया है। हो सकता है आकाश मार्ग से लाया हुआ यह मंदिर आकाशवप्र नामक स्थान की सार्थकता सिद्ध करता हो। वटेश्वरजी के शिष्य तत्वाचार्य थे। तत्वाचार्य वीरभद्रसूरि ने भी यहाँ की यात्रा की , उन्होंने जालौर और भीनमाल के कई मंदिरों

1. इसकी रचना जालोर में हुई।

का निर्माण कराया। उद्योतनसूरिजी के विद्यागुरु आचार्य हरिभद्रसूरि थे। जो चित्रकूट (वर्तमान चित्तौड़) निवासी थे। उन्हें जीरावला के मंदिर की पुनः प्रतिष्ठा से सम्बन्धित बताया जाता है। अपने जैन साहित्य के संक्षिप्त इतिहास के पृष्ठ 133 पर मोहनलाल दलीचंद देसाई ने आकाशवप्र नगर को अनन्तपुर नगर से जोड़ा है। मुनि कल्याणविजयजी ने इस नगर को अमरकोट से जोड़ा है। पर वटेश्वरसूरिजी का आकाशवप्र सिंध का अमरकोट नहीं हो सकता। वह तो भीनमाल के आसपास के प्रदेशों में ही होना चाहिये था, और वह मंदिर भी प्रसिद्ध होना चाहिये। यह दोनों ही शर्तें जीरावला के साथ जुड़ी हुई हैं। क्योंकि जैन तीर्थ प्रशस्ति में जीरावला को विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

विक्रम संवत् की सातवीं शताब्दी के अन्त में यहाँ पर चावड़ा वंश का राज्य रहा। वसन्तगढ़ के वि. सं. 682 के शिलालेख से इस बात की पुष्टि होती है। इस लेख के अनुसार संवत् 682 में वर्तलात नाम के राजा का वहाँ पर शासन था और उसकी राजधानी भीनमाल थी। वर्तलात के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी व्याघ्रमुख का यहाँ पर शासन था। वलभीपुर के पतन के पश्चात् वहाँ पर एक भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। अतः वहाँ के बहुत से लोग यहाँ आकर बस गये। पोरवाल जाति को संगठित करने वाले जैनाचार्य सूरिपुरंदर हरिभद्रसूरिजी ने (वि. सं. 757 से 827) यहाँ की यात्रा की और इस मंदिर की पुनः प्रतिष्ठा करवायी। सिद्ध सारस्वत स्तोत्र के रचयिता बप्पभट्टसूरि भीनमाल, रामसीन, जीरावला एवं मुण्डस्थल आदि तीर्थों की यात्रा कर चुके थे।

आठवीं सदी के प्रारंभ में यह प्रदेश यशोवर्मन के राज्य का अंग था। इतिहास प्रसिद्ध प्रतिहार राजा वत्सराज के समय में यह प्रदेश उसके अधीन था। उसकी राजधानी जाबालिपुर (जालौर) थी। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र नागभट्ट ने वि. सं. 872 में इस प्रदेश पर राज्य किया। नागभट्ट ने जीरावला के पास नागाणी नामक स्थान पर नागजी का मंदिर बनवाया जो आज भी टेकरी पर स्थित है। वह अपनी राजधानी जालोर से कन्नौज ले गया। महान जैनाचार्य सिद्धर्षि और उनके गुरु दुर्गस्वामी ने वि. संवत् की दसवीं सदी में यहाँ की यात्रा की। दुर्गस्वामी का स्वर्गवास भिन्नमाल (भीनमाल) नगर में हुआ था। नागभट्ट की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारियों में रामचन्द्र, भोजराज और महेन्द्रपाल प्रमुख हैं। उन्होंने इस प्रदेश पर शासन किया। प्रतिहारों के पतन के पश्चात् यह प्रदेश परमारों के अधीन रहा। परमार राजा सियक (हर्षदेव) का यहाँ शासन होना सिद्ध हुआ है। ग्यारहवीं

सदी के प्रारंभ में यह क्षेत्र राजा धुंधुक के अधीन रहा। चालुक्य राजा भीमदेव ने जब धुंधुक को अपदस्थ किया तो यह प्रदेश उसके अधीन रहा। भीमदेव के सिंहसेनापति विमलशाह का यहाँ पर शासन करने की बात सिद्ध हुई है। मंत्रीश्वर विमलशाह ने विमलवसहि के भव्य मंदिर का निर्माण आबू पर्वत पर करवाया। उन्होंने कई जैन मंदिरों का जीर्णोद्धार कराया और उन्हें संरक्षण प्रदान किया। बहुत समय तक यह प्रदेश गुजरात के चौलुक्यों के अधीन रहा। जीरावला के इस तीसरी बार जीर्णोद्धार वि. सं. 1033 में हुआ। तेतली नगर के सेठ हरदास ने जैनाचार्य सहजानन्दजी के उपदेश से इस पुनीत कार्य को करवाया। तेतली नगर निवासी सेठ हरदास का वंश अपनी दान-प्रियता के लिये प्रसिद्ध था।

उसी वंश परम्परा का इतिहास इस प्रकार मिलता है।

श्रेष्ठीवर्य जांजण

धर्मपत्नी स्योणी

श्रेष्ठीवर्य बाघा

धर्मसी-मन्नसी-घीरासा-घीरासा की धर्मपत्नी अजादे से हरदास उत्पन्न हुआ।

सं. 1150 से जीरावला का क्षेत्र सिद्धराज के राज्य का अंग था। वि. सं. 1183 के भीनमाल अभिलेख में चौलुक्य सिद्धराज के शासन का उल्लेख मिलता है। वि. सं. 1161 के लगभग जैनाचार्य समुद्रघोषसूरि और जिनवल्लभसूरि ने यहाँ की यात्रा की। लगभग इसी काल में जैन धर्म के महान आचार्य हेमचंद्राचार्य ने यहाँ की यात्रा की। वे कवि श्रीपाल, जयमंगल, वागभट्ट, वर्धमान और सागरचन्द्र के समकालीन थे। हर्षपुरीगच्छ के जयसिंहसूरि के शिष्य अभयदेवसूरि ने यहाँ की यात्रा की। अभयदेवसूरि ने रणथम्भोर के जैन मंदिर पर सोने के कुम्भ (कलश) को स्थापित किया था।

खरतरगच्छ के महान् जैनाचार्य दादा जिनदत्तसूरि ने भी यहाँ की यात्रा की। उनकी पाट परम्परा में हुए जिनचंद्रसूरिजी का नाम मंदिर की एक देहरी के लेख में मिलता है।

संवत् 1175 के पश्चात् यहाँ पर भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। अतः यह नगरी उजड़ गई और बहुत से लोग गुजरात में जाकर बस गये।

सिद्धराज के पश्चात् यह प्रदेश कुमारपाल के शासन का अंग था। उसने जैन धर्म अंगीकार किया और जैनाचार्यों और गुरुओं को संरक्षण प्रदान किया। उसके द्वारा कई जैन मंदिरों के निर्माण का उल्लेख मिलता है। किराडू के वि. सं. 1205 और 1208 के कुमारपाल के अभिलेख से उसके राज्य का विस्तार यहाँ तक होना सिद्ध होता है। जालोर से प्राप्त वि. सं. 1221 के कुमारपाल के शिलालेख से भी इस बात की पुष्टि होती है।

कुमारपाल के पश्चात् अजयपाल के राज्य का यह अंग था। गुजरात के शासक अजयपाल और मूलराज के समय में यहाँ पर परमार वंशीय राजा धारावर्ष का शासन था। मुहम्मदगोरी की सेना के विरुद्ध हुए युद्ध में उसने भाग लिया था। वि. सं. की तेरहवीं शताब्दी तक यहाँ पर परमारों का शासन रहा। वि. सं. 1300 के लगभग उदयसिंह चौहान का यहाँ शासन रहा। भिन्नमाल में वि. सं. 1305 और 1306 के शिलालेख प्राप्त हुए हैं जो उसके शासन के होने के प्रमाण हैं। उस समय उसकी राजधानी जालोर थी। उदयसिंह के पश्चात् उसके पुत्र चाचिगदेव का यहाँ राज्य रहा। वि.सं. 1313 का चाचिगदेव का एक शिलालेख सुन्धा पर्वत पर प्राप्त हुआ है। चाचिगदेव के पश्चात् दशरथ देवड़ा का यहाँ शासन रहा। वि. सं. 1337 के देलवाड़ा के अभिलेख में उसे मरुमण्डल का अधीश्वर बताया गया है। वि. सं. 1340 के लगभग यह प्रदेश बीजड़ के अधीन रहा। बीजड़ के बाद लावण्यकर्ण (लूणकर्ण) लुम्भा के अधीन यह प्रदेश था। लुम्भा बहुत ही धर्म सहिष्णु था। परमारों के शासनकाल में आबू के जैन मंदिरों की यात्रा करने वाले यात्रियों को कर देना पड़ता था। लुम्भा ने उसे माफ कर दिया। उसने आसपास के इलाकों में बहुत जैन मंदिर बनाने में धन व्यय किया। हो सकता है जीरावला को भी उनका सहयोग मिला हो।

अलाउद्दीन की सेनाओं ने जब जालोर आदि स्थानों पर हमला किया तो इस मंदिर पर भी आक्रमण किया गया। इस मंदिर के पास में ही अम्बादेवी का एक वैष्णव मंदिर था। अत्याचारियों ने पहले उस मंदिर की धन सम्पत्ति को लूटा और सारा मंदिर नष्ट भ्रष्ट कर दिया। उस मंदिर में बहुत सी गायों का पालन पोषण होता था। हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाने के लिये उन अत्याचारियों ने उन गायों को भी मार दिया। वहाँ से वे जीरावला पार्श्वनाथ के मंदिर की ओर बढ़े। मंदिर में जाकर उन्होंने गो-मांस और खून छांटकर मंदिर को अपवित्र करने की कोशिश की। ऐसा कहते हैं कि मंदिर में रुधिर छांटने वाला व्यक्ति बाहर आते ही

मृत्यु को प्राप्त हो गया। बाहर ही बहुत बड़े सर्प ने उसे डंक मारा और वह वहीं पर धराशाही हो गया। अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के घावों को भरने में लुम्भा ने बहुत सहायता की और जैन धर्म के गौरव को बढ़ाया। लुम्भाजी का उत्तराधिकारी तेजसिंह था। उसने अपने पिता की नीति का पालन किया और जैन धर्म को संरक्षण प्रदान किया। तेजसिंह के पश्चात् कान्हड़देव और सामंतसिंह के अधीन यह प्रदेश रहा।

पंडित श्री सोमधरगणि विरचित उपदेश सप्तति के जीरापल्ली सन्दर्भ में जीरावला तीर्थ सम्बन्धी कथा इस प्रकार दी गई है –

सं. 1190 में ब्राह्मण (आधुनिक वरमाण) स्थान में धांधल नाम का एक सेठ रहता था। उसी गाँव में एक वृद्ध स्त्री की गाय सदैव सेहिली नदी के पास देवीत्री[1] गुफा में दूध प्रवाहित कर आती थी। शाम को घर आकर यह गाय दूध नहीं देती थी। पता लगाने पर उस वृद्धा को स्थान का पता लगा। यह सोचकर कि यह स्थान बहुत चमत्कार वाला है, धांधल को बताया। धांधलजी ने मन में सोचा कि रात को पवित्र होकर उस स्थान पर जायेंगे। वे वहाँ जाकर के परमेष्ठि भगवान का स्मरण कर एक पवित्र स्थान पर सोये। उस रात में उन्होंने स्वप्न में एक सुन्दर पुरुष को यह कहते हुए सुना कि जहाँ गाय दूध का क्षरण करती है वहाँ पार्श्वनाथ भगवान की मूर्ति है। वह व्यक्ति उनका अधिष्ठायक देव था। प्रातःकाल धांधलजी सभी लोगों के साथ उस स्थान पर गये। उसी समय जीरापल्ली नगर के लोग भी वहाँ आये और कहने लगे कि अहो ! तुम्हारा इस स्थान पर आगमन कैसा ? हमारी सीमा की मूर्ति तुम कैसे ले जा सकते हो ? इस तरह के विवाद में वहाँ खड़े वृद्ध पुरुषों ने कहा कि भाई गाड़ी में एक आपका व एक हमारा बैल जोतो जहाँ गाड़ी जाएगी वहाँ मूर्ति स्थापित होगी। इस तरह करते यह बिंब जीरापल्ली नगर में आया। सभी महाजनों ने यहाँ प्रवेशोत्सव किया। **पहले चैत्य में स्थापित वीर बिंब को हटाकर श्री संघ की अनुमति–पूर्वक बिंब को इसी चैत्य में स्थापित किया।** बाद में वहाँ पर अनेक संघ आने लगे तथा उनका मनोरथ उनका अधिष्ठायक देव पूर्ण करने लगा। इस तरह यह तीर्थ प्रसिद्ध हुआ।

ऐसी मान्यता है कि यवन सेना के द्वारा मूर्ति खण्डित होने पर यहाँ पर अधिष्ठायक देव की आज्ञा से दूसरी मूर्ति की स्थापना हुई, पहली मूर्ति नवीन मूर्ति के दक्षिण भाग में स्थापित की गई थी। इस मूर्ति को सर्व प्रथम पूजा जाता है एवं

1. वरमाण व जीरावला के बीच बूड़ेश्वर महादेव के मंदिर के पास यह गुफा है।

इस मूर्ति को आज दादा पार्श्वनाथ की मूर्ति के नाम से जाना जाता है।

धांधलजी द्वारा निर्मित इस नवीन पार्श्वनाथ मंदिर की प्रतिष्ठा वि. सं. 1191 में आचार्य श्री अजितदेवसूरि ने की। वीर वंशावली में इसका उल्लेख इस प्रकार दिया गया है –

'तिवारइं धाधलइं प्रासाद निपजावी महोत्सव वि. सं. 1191 वर्षे श्री पार्श्वनाथ प्रासादे स्थाप्या श्री अजित–देवसूरि प्रतिष्ठया'

इस प्रकार यह तीसरी बार की प्रतिष्ठा थी। पहली (वि. सं. 331) अमरासा के समय में आचार्य देवसूरिजी ने करवाई।[1]

दूसरी बार मंदिर का निर्माण यक्षदत्त गणी के शिष्य वटेश्वरसूरिजी ने आकासवप्र नगर के नाम से मंदिर की स्थापना की। कुछ इतिहासकार वटेश्वरसूरिजी द्वारा प्रतिष्ठित आकाशवप्र नगर के मंदिर की बात विवादास्पद होने के कारण स्वीकार नहीं करते हैं। उनके अनुसार मंदिर की प्रतिष्ठा तीसरी बार हुई न कि मंदिर का निर्माण। पहली प्रतिष्ठा आचार्य देवसूरिजी ने, दूसरी प्रतिष्ठा आचार्य हरिभद्रसूरिजी ने और तीसरी बार यह प्रतिष्ठा आचार्य अजितदेवसूरिजी ने की।

धांधलजी द्वारा निर्मित मंदिर व मूर्ति को नुकसान अलाउद्दीन खिलजी के द्वारा पहुँचाने की बात की पुष्टि जीरापल्ली मण्डन पार्श्वनाथ विनती नाम के एक प्राचीन स्त्रोत से इस प्राकर से होती है –

'तेरसई अडसट्ठा (1368) वरिंसिंहिं, असुरह दलु जीतउ जिणि हरिसिंहि भसमग्रह विकराले।'' (कडी 9)

'कान्हडदेव प्रबंध' के अनुसार एवं अन्य ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह ज्ञात होता है कि संवत् 1367 में अलाउद्दीन खिलजी ने सांचोर के महावीर मंदिर को नष्ट किया और उसी समय उसने जीरावला के मंदिर को भी नुकसान पहुँचाया।

उपदेश तरंगिणी के पृष्ठ 18 के अनुसार सिंघवी पेथडसा ने संवत् 1321 में एक मंदिर बनवाने की बात लिखी है परंतु शायद यह मंदिर आक्रमणकारियों द्वारा नष्ट कर दिया गया होगा।

महेश्वर कवि लिखित काव्य मनोहर नामक ग्रंथ के सातवें सर्ग के 32वें श्लोक में लिखा हुआ है कि मांडवगढ़ के बादशाह आलमसाह ने दरबारी श्रीमान वंशीय

1. जीर्णोद्धार संबंधी तीन मतांतर पाये जाते हैं –
1. धांधल, 2. अमटसा, 3. पू. वटेश्वरसूरिजी द्वारा आकाशमार्ग से मंदिर लाना।

सोनगरा जांजणजी सेठ के छः पुत्रों के साथ सिंघवी आल्हराज ने इस तीर्थ में ऊंचे तोरणों सहित एक सुन्दर मंडप बनवाया।

जीरापल्ली महातीर्थे, मण्डपं तु चकार सः।

उत्तोरणं महास्तभं, वितानांशुक भूषणम्।।

वर्तमान मंदिर के पीछे की टेकरी पर एक प्राचीन किले के अवशेष दिखाई देते हैं जो शायद कान्हडदेव चौहान के सामंतों का रहा होगा। सन् 1314 में कान्हडदेव चौहान मारे गये, उनके बाद मण्डार से लेकर जालोर तक का इलाका अलाउद्दीन खिलजी के वशवर्ती रहा। न मालूम कितने अत्याचार इस मंदिर पर और जीरापल्ली नगर पर हुए होंगे उसके साक्षी तो यह जयराज पर्वत और भगवान पार्श्वनाथ हैं।

सन् 1320 के बाद सिरोही के महाराव लुम्भा का इस इलाके पर अधिकार हो गया परंतु अजमेर से अहमदाबाद जाने का यह रास्ता होने के कारण समय समय पर मंदिर व नगरी पर विपत्तियाँ आती रही। यहाँ से सेठ लोग नगरी को छोड़ चले गये एवं चौहानों ने भी इस स्थान को असुरक्षित समझ कर छोड़ दिया।

वि. सं. 1851 के शिलालेख के अनुसार इस मंदिर में मूलनायक रूप में पार्श्वनाथ विराजमान थे। पर इसके बाद किसी कारणवश भगवान नेमिनाथ को मूलनायक के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया गया था। इस घटना का उल्लेख किसी भी शिलालेख से ज्ञात नहीं होता। मंदिर के बांई ओर की एक कोठड़ी में अब भी पार्श्वनाथ की दो मूर्तियाँ विराजमान हैं एवं दूसरी कोठड़ी में भगवान नेमिनाथ।

ऐसी मान्यता है कि महान चमत्कारी भगवान पार्श्वनाथ की अमूल्य प्रतिमा कहीं आक्रमणकारियों के द्वारा खंडित कर दी जाय इस भय से पार्श्वनाथजी की मूर्ति को गुप्त भण्डार में विराजमान कर दिया गया हो और तब तक की अन्तरिम व्यवस्था के लिए ज्योतिष के फलादेश के अनुसार नेमिनाथ भगवान की मूर्ति को प्रतिष्ठित कर दिया गया हो।

समय समय पर जीर्णोद्धार होने के कारण एवं ऐतिहासिक शोध खोज की दृष्टि न होने के कारण मंदिर की मरम्मत करने वाले कारीगरों की छैनी और हथोड़े से मंदिर के पाटों और दीवारों पर के शिलालेख बहुरत्ना वसुन्धरा के गहन गर्त में समा गये हैं। शायद वे किसी समय की प्रतीक्षा में होंगे जब किसी महान आचार्य के आशीर्वाद से प्रकट होंगे, तब इस मंदिर की अकथ कहानी प्रकट होगी।

प्राचीन उल्लेखों के आधार पर पता लगता है कि इस मंदिर की दीवारों पर दुर्लभ भित्ति चित्र थे। किन्तु समय समय पर नये रंग रोगन के काम के कारण, कहीं संगमरमर चढ़ाने के कारण, कहीं घिसाई के कारण और कहीं सफेदी के कारण हमारी यह ऐतिहासिक धरोहर काल कवलित हो गयी है।

ऐसे ही जीर्णोद्धार के समय शिलालेख इत्यादि चीजों पर ध्यान न देने के कारण कई प्राचीन धरोहरें नाश हो गई हैं।

इतिहास से हमें पता लगता है कि हमने क्या पाया और क्या खोया... हम तो कहते हैं की इतिहास के नाश के द्वारा हमने तीर्थ की प्राचीनता को खोया है।

हमारा कर्त्तव्य बनता है कि जीर्णोद्धार के समय ध्यान रखा जाय कि तीर्थ की प्राचीनता नष्ट न हो जाय।

उसके ऐतिहासिक अवशेषों को सुरक्षित रखा जाये।

जीरावला तीर्थ की महिमा गाते कुछ वृत्तांत

(छ'रि पालीत यात्रा संघ उल्लेख व प्राचीन प्रबंध)

जैन शास्त्रों में तीर्थ यात्रा की काफी महिमा बताई है। छ'रि पालक यात्रा संघ जैन धर्म का गौरव बढ़ाने वाले व शासन प्रभावना करने वाले साबित हुए हैं। इसी यात्रा संघ की श्रेणी में जीरावला तीर्थ के संघों के कुछ वर्णन प्राप्त हो रहे हैं....

सामूहिक तीर्थ यात्रा का आयोजन करने वाले भाविक को हम संघपति कहते हैं। इन संघों के साथ बड़े-बड़े आचार्य शिष्य समुदाय के साथ विहार करते थे। जैन साधु तो चातुर्मास छोड़कर शेष आठ मास विहार करते ही रहते हैं। इन विहारों में वे मार्ग में आने वाले तीर्थों के दर्शन करते ही हैं। इस तीर्थ पर आए बहुत थोड़े संघों एवं आचार्यों का पता हमें लग सका है।

वि. सं. 331 के आसपास जैनाचार्य देवसूरिजी महाराज अपने सौ शिष्यों सहित यहाँ विहार करते हुए आये थे एवं इन्हीं ने अमरासा द्वारा निर्मित इस मंदिर की वि. सं. 331 वैशाख सुदी 10 को शुभ मुहुर्त में प्रतिष्ठा करवाई।

वि. की चौथी सदी में (लगभग 395वि. सं.) जैनाचार्य श्री मेरूसूरिश्वरजी महाराज एक विशाल संघ को लेकर इस तीर्थ में पधारे थे।

संवत् 834 के आसपास जैनाचार्य श्री उद्योतनसूरिजी ने 17 हजार आदमियों के संघ के साथ इस तीर्थ की यात्रा की थी। इस संघ के संघपति वडली नगर निवासी लखमण सा हुए। ये उद्योतनसूरि तत्त्वार्चा के शिष्य थे। इन्होंने वि. सं. 835 में जालोर में कुवलयमाला नाम की एक प्राकृत कथा की रचना की थी।

वि. सं. 1033 में तेतली नगर निवासी सेठ हरदासजी ने एक बड़ा संघ निकाला था। इस संघ के साथ जैनाचार्य श्री सहजानन्दसूरीश्वरजी महाराज थे।

वि. सं. 1180 में जैनाचार्य श्रीमानदेवसूरिजी की अध्यक्षता में जाल्हा श्रेष्ठी ने एक बहुत बड़े संघ के साथ इस तीर्थ की यात्रा की।

वि. सं. 1393 में प्राग्वाट वंशीय मीला श्रेष्ठी ने राहेड नगर से एक बड़ा संघ निकाला जिसमें जैनाचार्य श्री कक्कसूरिजी सम्मिलित हुए। इन कक्कसूरिजी ने वि. सं. 1378 में आबू के विमलवसही मंदिर में आदिनाथ के बिम्ब की प्रतिष्ठा की थी। इन्होंने बालोतरा, खम्भात, पेथापुर , पाटण एवं पालनपुर के जैन मंदिरों की प्रतिष्ठा करवाई थी।

वि. सं. 1303 में चित्रवालगच्छीय जैनाचार्य श्री आमदेवसूरिजी सेठ आम्रपाल सिंघवी के संघ के साथ जीरावला तीर्थ पधारे।

वि. सं. 1318 में खीमासा संचेती ने जैनाचार्य श्री विजयहर्षसूरिजी की निश्रा में एक संघ यात्रा का आयोजन किया गया।

वि. सं. 1340 में मालव मंत्रीश्वर पेथड़शाह के पुत्र झांझण शाह ने सुदी 5 को एक तीर्थ यात्रा का संघ निकाला था। यह संघ जीरावला आया था। यहाँ सिंघवी ने एक लाख रूपये मूल्य का मोती एवं सोने के तारों से भरा चंदरवा बांधा था। इसका वर्णन पंडित रत्नमंडनगणी ने अपने 'सुकृतसागर' में किया है।

वि. सं. 1468 में संघपति तापासा ने खरतरगच्छाचार्य श्री जिनपतिसूरिजी महाराज की निश्रा में एक तीर्थ यात्रा का आयोजन किया।

मांडवगढ़ वासी झांझण शाह के पुत्र सिंघवी चाड़ ने जीरावला एवं अर्बुद गिरि के संघ निकाले थे। उनके भाई आल्हा ने जीरावला में एक महामण्डप तैयार करवाया था-

'जीरापल्ली महातीर्थे मण्डपं तु चकार सः।

उत्तोरणं मा स्तम्भं वितानांशुक भूषितम्।।'

-काव्य मनोहर सर्ग -7

खंभात निवासी साल्हाक श्रावक के पुत्र राम और पर्वत ने वि. सं. 1468 में जीरापल्ली पार्श्वनाथ तीर्थ में यात्रा कर बहुत धन खर्च किया था।

वि. सं. 1475 में तपागच्छीय जैनाचार्य श्री हेमन्तसूरिजी महाराज के साथ संघपति मनोरथ ने एक विशाल तीर्थ यात्रा का आयोजन किया।

वि.सं. 1483 में वैशाख सुदी 13 गुरुवार के दिन अंचलगच्छ के आचार्य मेरुतुङ्गसूरि के पट्टधर जयकीर्तिसूरि के उपदेश से पाटन निवासी ओसवाल जातीय मीठडिया गोत्रीय लोगों ने इस तीर्थ में पांच देहरियों का निर्माण करवाया था। (पूर्णचन्द्र नाहर, जैन लेख संग्रह खंड -1 लेख 973)

वि. सं. 1483 में ही भाद्रपद वदि 7 गुरुवार के दिन तपागच्छीय आचार्य भुवनसुन्दरसूरि के आचार्यत्व में संघ निकालने वाले कल्वरगा नगर निवासी ओसवाल कोठारी गृहस्थों ने इस तीर्थ में तीन देहरियों का निर्माण करवाया था। (पूर्णचन्द्र नाहर, जैन लेख संग्रह खंड -1 लेख 974-976)

मेवाड़ के राणा मोकल के मंत्री रामदेव की भार्या मेलादेवी ने चतुर्विध संघ के साथ शत्रुञ्जय, जीरापल्ली और फलौदी तीर्थों की यात्रा की थी।

(संदेह दोहावली वृत्ति सं. 1486)

खंभात के श्रीमाल वंशीय सिंघवी वरसिंह के पुत्र दनराज ने वि.सं. 1486 में चैत्र वदि 10 शनिवार के दिन रामचंद्रसूरि के साथ संघ समेत इस तीर्थ की यात्रा की थी।

'रस-वसु-पूर्व मिताब्दे श्री जीरपल्लिनाथमर्वुदतीर्थ तथा नमस्कुरुते।'

(अर्बुद-प्राचीन जैन लेख संदोह ले. 303)

वि. सं. 1491 में खरतरगच्छीय वाचक श्री भव्यराजगणि के साथ अजवासा सेठिया ने विशाल जन समुदाय के साथ संघ यात्रा का आयोजन किया।

वि. की 15वीं सदी में सिंघवी कोचर ने इस तीर्थ की यात्रा की थी। इनके वंशीयों के वि. सं. 1583 के शिलालेख जैसलमेर के मंदिर में विद्यमान हैं।

वि. सं. 1501 में चित्रवालगच्छीय जैनाचार्य के साथ प्राग्वाट श्रेष्टीवर्य पुनासा ने 3000 आदमियों के संघ को लेकर जीरावला तीर्थ की यात्रा की।

खरतरगच्छ के नायक श्री जिनकुशलसूरि के प्रशिष्य क्षेमकीर्तिवाचनाचार्य ने विक्रम की 14वीं शताब्दी में जीरापल्ली पार्श्वनाथ की उपासना की थी।

संवत् 1525 में अहमदाबाद के संघवी गदराज डूंगर शाह एवं संघ ने जीरापल्ली पार्श्वनाथ की सामूहिक यात्रा की थी। इस यात्रा में सात सौ बैलगाडियाँ थीं और गाते बजाते आबू होकर जीरावला पहुँचे थे। उनका स्वागत सिरोही के महाराव लाखाजी ने किया था। इनमें से गढ़शाह ने 120 मन पीतल की ऋषभदेव भगवान की मूर्ति आबू के भीम विहार मंदिर में प्रतिष्ठित करवाई थी।

(गुरु गुण रत्नाकर काव्य सर्ग-3)

वि. सं. 1536 में तपागच्छीय लक्ष्मीसागरसूरिजी की निश्रा में श्रेष्ठीवर्य करमासा ने इस पवित्र तीर्थ की यात्रा की थी। इन लक्ष्मीसागरजी ने जीरावला पार्श्वनाथ स्तोत्र की भी रचना की है।

नन्दुरबार निवासी प्राग्वाट भीमाशाह के पुत्र डूंगरशाह ने शत्रुंजय, रैवतगिरी, अर्बुदाचल और जीरापल्ली की यात्रा की थी।

मीरपुर मंदिर के लेखों के अनुसार सं. 1556 में खंभातवासी बीसा ओसवाल

शिवाबाई ने अपने पति के श्रेयार्थ जीरावला तीर्थ में दो गोखले बनवाये थे। यह बाई यात्रार्थ यहाँ आई थी। सं. 1556 में ही प्राग्वाट सिंघवी रत्नपाल की भार्या कर्माबाई ने यहाँ की यात्रा की थी एवं उदयसागरसूरि के उपदेश से यहाँ एक देहरी बनवाई थी।

(यतीन्द्र विहार दिग्दर्शन भाग-1 पृष्ठ 120-123)

वि. सं. 1559 में पाटन के पर्वतशाह और डूंगरशाह नाम के भाइयों ने जीरावला अर्बुदाचल का संघ निकाला था। विक्रम की सोलहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में आचार्य सुमतिसुन्दरसूरि के उपदेश से सद्गृहस्थ वेला ने मांडवगढ़ से एक संघ निकाला था। यह संघ जीरावला आया था। (सोम चारित्रगणि गुरुगुणरत्नाकर काव्य)

सारंगपुर के निवासी जयसिंह शाह, आगरा के सिंघवी रत्नाशाह ने अट्ठासी संघों के साथ आबू और जीरावला की यात्रा की थी। (सोमचारित्रगणि गुरुगुण रत्नाकर काव्य)

सं. 1746 में शीलविजयजी की तीर्थमाला में ओसवाल सूरा व रत्ना दो भाइयों का उल्लेख आता है। उनके वंशज धनजी, पनजी व मनजी ने तीन लाख रुपया खर्च करके एक संघ निकाला था। जो जीरावला आया था।

सं. 1750 में सौभाग्य विजय विरचित तीर्थमाला में जीरावला का उल्लेख है।

सं. 1755 में ज्ञानविमलसूरि द्वारा लिखित तीर्थमाला में सूरिपुर से श्रावक सामाजी द्वारा निकाले गये संघ का वर्णन है।

वि. सं. 1891 में आषाढ़ सुदी 5 के दिन जैसलमेर के जिनमहेन्द्रसूरि के उपदेश से सेठ गुमानचंदजी बाफना के पाँच पुत्रों ने तेईस लाख रुपये खर्च कर श्री सिद्धाचल का संघ निकाला था। इस संघ ने ब्राह्मणवाड़ा, आबू, जीरावला, तारंगा, शंखेश्वर, पंचासर एवं गिरनार की यात्रा की थी। इस सम्बन्ध का वि. सं. 1896 का लेख जैसलमेर के पास अमर सागर मंदिर में विद्यमान है।

इसके अतिरिक्त 19वीं सदी के निरन्तर कितने ही संघ निकले जिनकी सूची देना यहाँ सम्भव नहीं है। 20 वीं सदी में तो यातायात का अच्छा प्रबंध होने के कारण प्रतिवर्ष पचासों संघ इस तीर्थ में आते रहते हैं। जिनका उल्लेख करना मात्र पुस्तक का कलेवर बढ़ाना होगा।

इस तीर्थ पर बड़े-बड़े आचार्य चातुर्मास के लिये पधारते थे एवं तीर्थ की प्रभावना में वृद्धि करते थे।

अंचलगच्छीय श्री मेरुतुङ्गसूरिजी महाराज ने यहाँ अपने 152 शिष्यों के साथ चातुर्मास किया था।

आगमगच्छीय श्री हेमरत्नसूरिजी ने अपने 75 शिष्यों के साथ इस तीर्थ की पवित्र भूमि पर चातुर्मास किया था। इसी गच्छ के श्री देवरत्नसूरिजी ने अपने 48 शिष्यों सहित इस तीर्थ भूमि पर चातुर्मास किया था।

उपकेशगच्छीय श्री देवगुप्तसूरिजी महाराज ने अपने 113 शिष्यों सहित, कक्कसूरिजी ने अपने 71 शिष्यों सहित एवं वाचनाचार्यश्री कपूरप्रीयगणि ने अपने 28 शिष्यों के साथ अलग-अलग समय यहाँ चातुर्मास किया था।

इसी प्रकार खरतरगच्छ के श्री जिनतिलकसूरिजी महाराज ने अपने 52 शिष्यों के साथ एवं कीर्तिरत्नसूरिजी ने अपने 31 शिष्यों सहित यहाँ अलग-अलग चातुर्मास किया था।

तपागच्छीय श्री जयतिलकसूरिजी महाराज ने अपने 68 शिष्यों के साथ यहाँ चातुर्मास किया था और मुनि सुन्दरसूरिजी ने भी अपने 41 शिष्यों के साथ यहाँ चातुर्मास किया था। इन्ही मुनि सुन्दरसूरिजी के उपदेश से सिरोही के राव सहसमल ने शिकार करना बन्द कर दिया था एवं पूरे क्षेत्र में अमारी का प्रर्वतन करवाया। इन्होंने सन्तिकरं स्त्रोत की रचना की थी।

जीरापल्ली गच्छीय उपाध्याय श्री सोमचंद्रजी गणि ने अपने 50 शिष्यों के साथ इस तीर्थ की भूमि पर चातुर्मास किया था। नागेन्द्रगच्छीय श्री रत्नप्रभसूरिजी महाराज ने अपने 65 शिष्यों सहित यहाँ पर चातुर्मास किया था। पीप्पलीगच्छीय वादी श्री देवचंद्रसूरिजी महाराज ने अपने 61 शिष्यों के साथ यहाँ चातुर्मास किया था, ये प्रभावक आचार्य शांतिसूरि के शिष्य थे। इसके अतिरिक्त बहुत से समर्थ जैनाचार्यों ने यहाँ विहार के दौरान विश्राम किया था। बहुत से आचार्यों ने जीरावला के जीर्णोद्धार में बहुत योगदान दिलवाया था, उनके नाम देवकुलिकाओं के शिलालेखों में उत्कीर्ण हैं।

यात्रा एवं संघ के जयनाद आज भी जीरावलाजी तीर्थ की गौरवगाथा का गान कर रहे हैं।

प्राचीन साहित्य में जीरावला तीर्थ के आलेख...

किसी भी तीर्थ की प्राचीनता जाननी हो तो सबसे पहला संदर्भ है 'साहित्य' प्राचीन साहित्य के उल्लेख से हमें पता लगता है कि जीरावला तीर्थ की नौंध प्राचीन ग्रंथों ने ली थी। इससे तीर्थ की प्राचीनता व प्रभावकता प्रतीत होती है... जीरावला तीर्थ व पार्श्वनाथ प्रभु के संदर्भ में कई प्राचीन स्तोत्र भी मिलते हैं जो जीरावला पार्श्वनाथ प्रभु के अतिशय का वृत्तांत देते हैं... आइए यात्रा करते हैं जीरावला तीर्थ के साहित्य की....

जीरावला तीर्थ से संबंधित बड़े-बड़े आचार्यों ने स्तोत्रों की रचना की है। उनके नाम इस प्रकार हैं-

श्री सौभाग्यमूर्ति जी- श्री पार्श्वजिन स्तोत्रम्।

श्री लक्ष्मीसागरसूरिजी - श्री पार्श्वजिन स्तवनम्।

श्री उदयधर्मगणि - श्री जीरापल्ली पार्श्वजिन स्तवनम्।

श्री सिद्धान्तरूचि- श्री जयराजपुरीश श्री पार्श्वजिन स्तवनम्

- श्री जयराजपल्ली मण्डन श्री जिन स्तवनम्

श्री महेन्द्रसूरिजी - श्री जीरिकापल्ली तीर्थालङ्कार श्री पार्श्वजिन स्तवन-3

भुवनसुन्दरसूरि राणकपुर तीर्थ की प्रतिष्ठा करवाने वाले आचार्य सोमसुन्दर सूरि के तीसरे शिष्य थे। ये बड़े विद्वान थे एवं इन्होंने कई काव्यों की रचना की थी। इसी संघाडे के श्री लक्ष्मीसागरसूरिजी को सं. 1508 में सूरि पद की प्राप्ति हुई थी। इन्होंने ईडरगढ़ पर अजितनाथ भगवान की मूर्ति की प्रतिष्ठा की थी। सिरोही के तत्कालीन तहाराव लाखा के मंत्री उजलसी एवं काजा द्वारा करवाये गये कई धार्मिक अनुष्ठानों में इन आचार्य की उपस्थिति रही है। इन्होंने आबू, अचलगढ़ आदि पर कई जैन मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई। इन उजलसी और काजा ने लक्ष्मी सूरिजी के शिष्य सोमजयसूरि के साथ जीरावला की यात्रा की थी एवं सप्ताह्निका महोत्सव करवाया था।

'श्री सोमदेवः सह सूरिभिः पुरा यौ जीरपल्ल्याँ जिनपार्श्ववन्दनम् अकारिषा-तामिह सप्तवासरान् महेन यावत् कर मोचनादिना।65।'

(गुरु रत्नाकर काव्य सर्ग-3)

सं. 1320 के लगभग मांडवगढ़ (मालवा) के मंत्रीश्वर पेथडशा ने 84 जिनमंदिर करवाये थे उसमे से एक मंदिर जीरापुर में करवाया था। यह जीरापुर शायद जीरावला ही होगा एवं मंदिर करवाने का अर्थ जीर्णोद्धार करवाना होगा। उनके वंशज झांझणशाह ने वि. सं. 1340 के माघ सुदी 5 के दिन नागदा के नवखंडा पार्श्वनाथ को नमन करने के पश्चात् संघ समेत जीरावला की तरफ प्रस्थान किया था एवं वहाँ सिंघवी ने करोड़ों पुष्पों से पुष्प पूजा तथा 6 मन कपूर से धूप पूजा की थी। 1 लाख द्रव्य की लागत से तैयार मोतियों एवं सोने के भरे चन्दोवे को मंदिरजी के लिये अर्पित किया था।

(पंडित रत्न मंडनगणि विरचित सुकृतसागर तरंग - 3-8)

वि. सं. 1380 में 'सप्ततिशतस्थान' इत्यादि ग्रंथों के रचनाकार तपागच्छ नायक सोमतिलकसूरि ने शत्रुञ्जय महातीर्थ में वन्दन करते समय जीरापल्ली पार्श्व भवन में 14 जिनेश्वर देवों को वंदन किया है।

'चिल्लतलावल्ली समीपे अलक्ष देव कुलिकायां

अजितनाथ भवने जीरापल्ली पार्श्व भवने च 14 जिनान् वंदतेस्म।'

- कथा कोश (छाणी जैन ज्ञान मंदिर हस्तलिखित प्रति।पत्र 171)

विक्रम की 14वीं सदी के उत्तरार्द्ध में सुलतान मुहम्मद तुलक पर प्रभाव डालने वाले जिनप्रभसूरि के 'जीरिकापुरपतिं सदैवतं' से प्रारम्भ होने वाला 15 पद्यमय जीरापल्ली पार्श्वनाथ स्तवन लिखा था।

विक्रम की 15वीं सदी में आचार्य श्री जयसिंहसूरि ने जीरावला मंडल श्री पार्श्वनाथ स्तोत्र में इस तीर्थ पति की अत्यन्त भावभरी स्तुति की है :-

प्रणमदमर मौलिस्प्रेकोटीरकोटी,

प्रसृमर किरणौद्योनिनद्रपादारविन्दम्।

विधुर विविध बादुम्भोधितीराभं,

जीरावलिनिलयमहं तं स्तौमि वामातनूजम्।।1।।

चकास्ति कुशलावलीलन वेश्य जीरावली,

मही वलय मण्डन स्त्रिजगती विपत्खंडनः।

य एष भुवन प्रभुः स जयसिंहसूरिं स्तुती,

ददातु परमं पदं सपदि पार्श्वनाथो जिनः ।।2।।

– जैन स्तोत्र संग्रह, प्राच्य विद्यामंदिर-बडोदरा)

इसी सदी में कविराज श्री जयशेखरसूरि ने जीरापल्लीय पार्श्वनाथ की विनती गुजराती भाषा में लिखीः–

'जगन्नाथु जीराउलउ हुँ जुहारऊं,

प्रभु पासु पूजि सवे काल सारऊं।

जि के देव जीराउला नामि लागई,

जई बीजा तणई ते न भागई।

सवे दोहिल्या तीह तऊ दूरि नासई,

वसई संपद पसिऊं पाय पासई।

धणउ भाउ जीराउलिई जई वानसु,

जितं थाह रिऊ ताहरउ देव ! नामऊ।

करीए गली वेगला पाप–पास,

इसी माहरी पूरि तूं आस–पास।

सं 1432 में कविराज मेरुनन्दन ने यमक अनुप्रास की छटा से युक्त 'जीरापल्ली पार्श्वनाथ फागु' की रचना की थी (देखिए परिशिष्ट)

वि. सं. 1478 में पृथ्वीचन्द्र चरित्र के रचयिता माणिक्यसुन्दरसूरि ने नेमीश्वर चरित्र के प्रारंभ में जीरावला पार्श्वनाथ की स्तुति की है :–

'नमउनिरंजन विमल सभाविहिं भाविहिं महिम निवासरे देव जीरापाल्लवल्लिय नवधन, विधन हरई प्रभु पासरे।'

वि सं. 1485 में पीपलगच्छ के हीरानंदसूरि ने अपने विद्याविलास चरित्र - पवाडे (पाटन जैन भण्डार) के प्रारंभ में वंदना की है :–

'पहिलउं पगमिअ–पढ़मजिणेसर सित्तुञ्जय अवतार'

हथिणउरि श्री शांति जिणेसर उजलि (जति) नेमिकुमार जीराउलिपुरी पास जिणेसर साचउसिं वर्धमान कासमीर पुरी सरसती सामिणि ! दिउ मअ नितु वरदान।'

पन्द्रहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में आचार्यमुनि सुन्दरसूरि ने 'जयश्री' शब्द से अंकित जिन स्तोत्र रत्नकोश में जीरावला पार्श्वनाथ का स्मरण किया है :-

'जय श्रियं सर्वरिपून् जिगीषतां,

स्तुता यदाख्याऽपि तनोति मन्त्रवत्।

स्तवीमितं पार्श्वजिनं शिवश्रिये,

श्री जीरिकापल्लि वतंसमिष्टदम्।।1।।

लगभग इसी समय लिखे कवि भुवनसुन्दरसूरिजी के जीरावला स्तोत्र को अविकल परिशिष्ट में दिया जा चुका है।

सं. 1499 में पं. मेघ ने अपनी तीर्थमाला में इस तीर्थ को इस प्रकार याद किया है -

घणी वात अरवद नी भली, अम्हि जासिउ हिव जीराउली।

प्रकट पास करउ अति भलऊ, सकल सामि जीराउलउ ।।59।।

सदा संघ आवई घणा, प्रत्या पूरई सविहु तणा।

भाजई भीड रोग सवि गमई जीराउलउ पा इणि समई ।।60।।

वि. सं. 1503 में तपगच्छीय पंडित सोमधर्मगणि ने अपनी उपदेश सप्तति में इस तीर्थ की स्थापना एवं नगरी के विषय में लिखा है –

'श्री जीरिकापल्लि–पुर–नितम्बिनी–कण्ठस्थले हारतुलांदधातियः।

प्रणम्य तं पार्श्वजिनं प्रकाश्यते तत्तीर्थ सम्बन्धकथा यथा श्रुतम्।।'

जीरिकापल्लि पुरी रूपी सुन्दरी के कण्ठस्थ में हार रूप पार्श्वजिन को प्रणाम करके उनकी तीर्थ संबंधी कथा को मैं प्रकाशित कर रहा हूँ।

सं 1491 में महाराणा कुम्भकरण के मेवाड़ के देलवाड़ा मंदिर के शिलालेख में शत्रुंजय व जीरावला तीर्थ को समान श्रेणी में रखा गया है।

–(विजयधर्मसूरि सम्पादित देवकुल पाठक यशोविजय ग्रंथमाला पृष्ठ–33)

वि.सं. 1519 में जिनप्रभसूरि के शिष्य महोपाध्याय सिद्धान्तरूचि ने जीरावला पार्श्वनाथ स्तोत्र की रचना की थी एवं वर प्राप्त किया था। यह स्तोत्र परिशिष्ट में दिया जा चुका है।

सं 1524 में लिखित सोम सौभाग्य काव्य के मंगलश्लोक में जीरावला का उल्लेख है:-

श्री जारपल्लि नगरी गुरु मल्लिपल्लि,

प्रोल्लासनोन्नत धनाधन सन्निभो यः।

काले कलौ प्रविलसत्प्रबल प्रतापो,

जागर्ति पार्श्वजिन राजमंह स्तुवे तम्।।

इसी सदी में तपागच्छीय सोमजयसूरि के एक शिष्य ने जीरावला पार्श्वनाथ का एक छटावार स्तवन लिखा है।

जीराउलि राउलि कय निवास,

वासव संसेविय परव पास।

पासप्पदु ! मह तुं पूरि आस,

असेसणवंस निहय प्पयास।।1।।

खरतरगच्छ के शान्तिसमुद्र स्तोत्र में जीरावला पार्श्वनाथ का उल्लेख -

सरीसे जालउरि जीरवल्ली करहेडई।

पण सग नवफण मंडणउ पासु नमउ सविकाल।।

पन्द्रहवीं सदी में रत्नाकरगच्छ के आचार्य हेमचंद्रसूरि के शिष्य जिनतिलकसूरिजी ने तीर्थमाला स्तोत्र चैत्यपरिपाटि गा. 22 में लिखा है -

'जीरउलि भेटउ पासनाह।'

वि. सं. 1517 में भोज प्रबन्ध के रचयिता रत्नमंदिरगणि ने उपदेश तरंगिणी में तीर्थों का उल्लेख करते हुए जीरापल्ली का नाम लिया है।

माण्डवगढ़ के मंत्री पेथड़कुमार ने पार्श्वनाथ विवाहलउ कवित्त में भगवान की प्रार्थना की है।

वि. सं. 1554 में कोरंटगच्छ के कवि नन्नसूरि ने जीराउला गीत की रचना की है। देखिये परिशिष्ट।

पाटन जैन भण्डार में सुरक्षित सं. 1556 में रचित विक्रमादित्य पंच दंडातपत्र चरित्र के प्रारंभ में स्तुति है -

'जयु पास जीराउलु जगमंडण जग चंद।

जास पसाई पामीई नितनित परमान्द।।'

वि. सं. 1568 में कवि लावण्यसमय ने विमल प्रबन्ध रास खंड 3 गाथा 118 में लिखा है –

'जीरउलानउ महिमा धणउ।'

उन्हीं के खीमा ऋषि रास में भी जीरवला की स्तुति की गई है –

जीरउलउ जिण थंत्रणउ गडी मंडण पास।

सुरसेवक जे तसु तणा पूरई जहा मन आस।।

इन्हीं लावण्यसमयजी ने 'जीराउला पार्श्वनाथ स्तवन' जीराउली गहुँली आदि लिखी है।

आचार्य शांतिसूरि चरित अर्बुदाचल चैत्य परिपाटी पद्य 17 के प्रारंभ में 'जीरापल्ली पास जुहारी' वन्दना की गई है

पाटण जैन भण्डार में सुरक्षित संवत 1582 में वाचक सहजसुन्दर द्वारा लिखित रत्नसार कुमार चौपाई में जीरावला पार्श्वनाथ की स्तुति की गई है।

इसी तरह सुधाभूषणजी के शिष्य जिनसूरि ने 'प्रियंकर नृप कथा' में जीरावला का स्मरण प्रत्येक पद्य के आद्यअक्षर में किया है–

'जीभई साचुं बोलिजे राग रोस करि दूरि।

उत्तमसुं संगति करो लाभई सुख जिम भूरि।।'

सं. 1605 में उपकेशगच्छ के आचार्य कक्कसूरि के शिष्य कवियण ने 'कुल ध्वज रास' में जीरावला पार्श्वनाथ की वंदना की है –

'पास जिणेसर पय नमी जीराउलि अवतार,

महियलि महिमा जेहनउ दीसई अतिहि उदार।'

कवि कुशल संयम ने अपने 'हरिबल रास' के प्रारंभ में इस प्रसिद्ध तीर्थ का उल्लेख किया है –

'पहिलउ प्रणमुं पासं जिण जीराउलनुं राय,

मन वंछित आपई सदा सेवई सुरपति पाय।'

तपागच्छ नायक, हेमविमलसूरि के शिष्य श्रुतमाणिक्य ने अपने प्रभात प्रभु वन्दन में जीरावला पार्श्वनाथ का सर्व प्रथम उल्लेख किया है –

'जीराउलिपुरी पास नमंता निश्चई

भवियणह पूरई मननी आस, प्रहि उठी प्रभु प्रणमीई।'

वि. सं. 638 में रचित प्रतिष्ठाकल्प के प्रारंभ में जीरापल्ली भूषण भगवान की वन्दना की गई है–

'श्री पार्श्वेसो विभाशाली लक्ष्मीराज्य जय,

जगद्गुरुर्जयत्येकः जीरापल्लि विभूषणम्।'

वि. सं. 1752 में पंडित रत्न कुशल विरचित 'पार्श्वनाथ संख्या स्तवन' में जीरावला की महिमा का वर्णन किया है –

'श्री जीराउली नवखंड पास वखाणीई रे,

नामई लील बिलास,

संकट विकट उपद्रव सवि दूरिई टलई रे,

मंगल कमला वास।''

इसी प्रकार सं. 1667 में मुनि शान्तिकुशल विरचित गोड़ी पार्श्वनाथ स्तवन में जीरावला का उल्लेख किया है।

तपागच्छ के कवि हेमविजयगणिजी की अधूरी 'विजय प्रशस्ति' के अन्तिम 5 सर्ग पूर्ण करने वाले गुण–विजयगणि ने इस काव्य की दस हजार श्लोक प्रमाण टीका ईडरगढ़ में शुरु की एवं सं. 1688 में सिरोही के जीरावला पार्श्वनाथ की मूर्ति के समक्ष पूरी की।

'सिरोही चैत्य परिपाटी' स्तवन में पं. कांतिविजयजी ने इस प्रकार जीरावला पार्श्वनाथ के महिमा मण्डित स्वरूप का वर्णन किया है –

पास–आस पूरे भवि जनकी जीरावली जगमाहिं।

वि. सं. 1721 में पं. मेघविजयजी अपनी पार्श्वनाथ नाम माला में जीरावला का बड़े आदर पूर्वक नाम लिया है एवं शीलविजयजी की तीर्थमाला में तो स्पष्ट कहा है कि–

'जीराउली दादो दीपतो तेजि त्रिभुवन रवि जीपतो।'

इसी प्रकार पं. कल्याणसागरजी ने अपनी पार्श्वनाथ चैत्य परिपाटी में एवं कवि ज्ञानविमलजी ने अपनी तीर्थमाला में जीरावला पार्श्वनाथ का बहुत आदर पूर्वक नाम लिया है।

सं. 1755 में ज्ञानविमलसूरि कृत तीर्थमाला में जीरावला का इस प्रकार वर्णन है–

हिवे तिहांली संचर्या सुणि सुन्दरि

आव्या मढ़ाड़ी मजारि साहेलड़ी

बिचि ब्रह्माणी जीराउलो सुणि सुन्दरी।

विजयप्रभसूरि के समय में हुए मेघविजय उपाध्याय विरचित 'श्री पार्श्वनाथ नाम माला' (वि. सं. 1721) में जीरावला पार्श्वनाथ का उल्लेख है।

पं. कल्याणसागर विरचित पार्श्वनाथ चैत्य परिपाटी में जीरावला का इस प्रकार वर्णन है --

जीराउलि जग में जागतो,

सूरतिमई हो दीपई सुखकंद।

सं. 1886 में दीपविजयजी ने 'जीरावला पार्श्वनाथ स्तवन' में इस तीर्थ की महिमा का वर्णन किाय है –

स्वस्ति श्री त्रिभुवन पति जयकारी रे;

जीरावली जिनराज जग उपकारी रे।

प्रणमी पदकंज तेहना जयकारी रे,

वरणुं ते महाराज जग उपकारी रे।।

उक्त शास्त्रपाठों से तीर्थ के महत्त्व व चमत्कार का एहसास होता है।

जीरावलाजी तीर्थ से जीरापल्ली गच्छ का सफर...

एक तीर्थ... जिसके महत्त्व के कारण एक गच्छ का नाम रखा गया है.... गच्छ के आचार्यों की प्रभावकता व जैन शासन निष्ठा एक श्रेष्ठ उदाहरण है...

विक्रम की 16वीं शताब्दी में ब्रह्मर्षि ने सुधर्मगच्छ परीक्षा में चौरासी गच्छों में जीरावला गच्छ का उल्लेख किया है जीरावला तीर्थ की इतनी महिमा है कि इसके नाम से एक गच्छ प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ। इस गच्छ की स्थापना कब हुई, यह तो कहा नहीं जा सकता पर 15वीं शताब्दी में इस गच्छ के आचार्यों के कुछ उल्लेख प्राप्त होते हैं। इस गच्छ के प्रसिद्ध आचार्य रामचन्द्रसूरि द्वारा प्रतिष्ठित भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा उदयपुर के जैन मंदिर में प्रतिष्ठित है।

(जैन लेख संग्रह खंड-2, लेख 1049 - पूर्णचन्द्र नाहर)

इसी गच्छ के शालिभद्रसूरि द्वारा प्रतिष्ठित सं. 1440 पोष सुदी 11 के दिन स्थापित शांतिनाथ भगवान की मूर्ति बड़ौदा के गोड़ी पार्श्वनाथ मंदिर में विद्यमान है।

(जैन प्रतिमा लेख संग्रह भाग - 2 लेख 214)

वि. सं. 1449 के बैशाख सुदी 6 शुक्रवार के दिन प्राग्वाट चाहड की पत्नी चापलदे के पुत्र जेसल ने शालीभद्रसूरि के द्वारा भगवान् पद्मप्रभ की मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाई थी।

(अर्बुद प्राचीन जैन लेख संदोह लेख 603)

वि. सं. 1668 वैशाख वदी 3 शुक्रवार के दिन ओसवाल वंशीय रामाजी की भार्या देवी के पुत्र माधव ने श्रेयांसनाथ भगवान की पंचतीर्थी प्रतिमा जीरापल्ली गच्छ के वीरभद्रसूरि द्वारा प्रतिष्ठित करवाई थी। यह मूर्ति खंभात के नवखण्डा पार्श्वनाथ जिनालय में विद्यमान है।

(जैन प्रतिमा लेख संग्रह भाग-2 लेख 874)

वि. सं. 1477 में ओसवाल वंश के पांचा ने भगवान महावीर की मूर्ति शालिभद्रसूरि द्वारा प्रतिष्ठित करवाई थी। यह मूर्ति मातर के सुमतिनाथ बावन जिनालय मंदिर में विद्यमान है।

(जैन प्रतिमा लेख संग्रह भाग-2 लेख 461)

वि. सं. 1483 वैशाख सुदी 5 गुरुवार के दिन सूदाजी ओसवाल ने अपने

माता पिता के कल्याण के लिये भगवान् चन्द्रप्रभ की मूर्ति बनवा कर जीरापल्लीगच्छ के उदयरत्नसूरि द्वारा प्रतिष्ठित करवाई थी। यह प्रतिमा बडौदा के दादा पार्श्वनाथ मंदिर में विराजमान है। इसी गच्छ के शालिभद्रसूरि की पाट परम्परा में हुए उदयचन्द्रसूरि द्वारा प्रतिष्ठित भगवान पार्श्वनाथ की धातु मूर्ति म्यूनिख (जर्मनी) के म्युजियम में विद्यमान है।

(पूर्णचन्द्र नाहर जैन लेख संग्रह खण्ड - 1 लेख 396)

वि. सं. 1527 में ओसवाल जाति के कुछ श्रावकों ने लखनऊ में शान्तिनाथ बिम्ब की प्रतिष्ठा जीरापल्ली गच्छ के उदयचन्द्रसूरि द्वारा करवाई थी।

जीरापल्ली गच्छ के भट्टारक देवरत्नसूरि के संतानीय मुनि सोमकलश द्वारा लिखित चित्रसेन पद्मावती कथा (वि. सं. 1524) की प्रति पाटन के जैन भण्डार में सुरक्षित है।

वि सं. 1602 में जीरापल्लीय गच्छ में लिखित श्राद्ध प्रतिक्रमण सूत्र वृत्ति की एक प्रति जैनानंद पुस्तकालय सूरत में विद्यमान है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जीरावला गच्छ में उत्पन्न आचार्यों ने बहुत कार्य किया है परन्तु उनके उल्लेख काल कवलित हो गये हैं।

जीरापल्ली ही जीरावला, तीर्थ का प्राचीन नाम रहा है.... पल्ली (छोटे कस्बे के लिए) जयराज राजा की पल्लि, जयराजपल्ली, जीरापल्ली, जीराउल्ली, जीरउला, जीरावला, जीरिकापल्ली आदि सब नाम एक नाम के ही अपभ्रंश रूप हैं।

जीरावलाजी तीर्थ से जुड़ी कुछ एतिहासिक घटनाएँ

भगवान पार्श्वनाथ तो स्वयं चिन्तामणि हैं। उनके महाप्रभावक स्वरूप का वर्णन हम क्या कर सकते हैं ? यहाँ कुछ मात्र आपके समक्ष प्रस्तुत किये जाते हैं।

1. यह घटना वि. सं. 1318 की है। जैनाचार्य श्री मेरुप्रभसूरिजी महाराज अपने 20 शिष्यों सहित ग्रामानुग्राम विहार करते हुए श्री जीरापल्ली गाँव की ओर जा रहे थे। वे कुछ ही आगे बढ़े थे कि रास्ता भूल गये और बहुत समय तक पहाड़ी की झाड़ियों के आसपास चक्कर लगाते रहे, किन्तु रास्ता नहीं मिला। उधर दिन अस्त होता जा रहा था। इस जगंल में हिंसक जानवरों की बहुलता थी और रात का समय जंगल में व्यतीत करना खतरे से खाली नहीं था। इस पर आचार्यश्री ने अभिग्रह धारण किया कि जब तक वे इस भयंकर जंगल से निकल कर श्री जीरावला पार्श्वनाथजी के दर्शन न कर लेंगे, तब तक अन्न-जल ग्रहण नहीं करेंगे। इस अभिग्रह के कुछ ही समय बाद सामने से एक घुड़सवार आता दिखाई दिया। इस भयंकर घाटी में जहाँ उन्हें घंटों से कोई आदमी दृष्टिगोचर न हुआ था, वहाँ घोड़े पर आदमी को आते हुए देखकर कुछ ढ़ाढस बंधा। घुडसवार ने आचार्यश्री को जीरावल्ली गाँव तक पहुँचा दिया। आचार्यश्री ने इस घटना का वर्णन किया है।
2. वि. सं. 1463 के समय की बात है। ओसवाल जातीय एक दुधेड़िय गोत्रीय श्रेष्ठीवर्य आभासा ने भरुच नगर से 150 जहाज माल के भरे और वहाँ से अन्य देश में व्यापार के लिये रवाना हुआ। जब जहाज मध्य समुद्र में पहुँच गया तो समुद्र में बड़ा भारी तूफान उठा। सभी जहाज डांवाडोल होने लगे। आभासा को ऐसे संकट काल में शान्तिपूर्वक वापस लौटने का विचार आया और उसने प्रतिज्ञा की कि यदि उसके जहाज सही सलामत पहुँच जायें तो वहाँ पर पहुँचते ही सबसे पहले श्री जीरावला पार्श्वनाथजी के दर्शन करुंगा। और उसके बाद अन्य देश में व्यापार के लिये रवाना होऊंगा। इस प्रकार प्रतिज्ञा करके जहाजों को वापस लौटने का हुक्म दिया। सबके सब जहाज बिल्कुल सुरक्षित वापस पहुँच गये और सेठ आभासा ने भी अपनी प्रतिज्ञानुसार वापस पहुँच कर सर्वप्रथम श्री जीरावला पार्श्वनाथ तीर्थ की यात्रा की।

3. ??????????? की कि यदि यह महान् संकट टल गया तो वह जीवन पर्यंत जीरावला पार्श्वनाथ के नाम की माला जपे बिना अन्न जल ग्रहण नहीं करेगा। उधर कुछ समय पश्चात् सम्राट का क्रोध शान्त हुआ। उन्हें अपने हुक्म पर पश्चाताप हुआ। सम्राट ने मार डालने का हुक्म वापस ले लिया और उसके विरुद्ध जो बातें सुनी थी उसकी जांच आरंभ की। जांच के बाद सम्राट को मालूम हुआ कि सेठ के विरुद्ध कही गई बातें निराधार और बनावटी है। सम्राट ने मेघासा की ईमानदारी, वफादारी और सच्चाई पर प्रसन्न होकर एक गाँव भेंट में दिया।

4. एक बार 50 लुटेरे इकट्ठे होकर आधी रात के समय चोरी के इरादे से मंदिर में घुसे और अन्दर जाकर सब सामान और नकदी सम्भाल ली। हर एक ने अपने लिये एक-एक पोटली बांध कर सिर पर रखी और जिस तरफ से अन्दर घुसे थे उसी ओर से बाहर जाने लगे। इतने में सबकी आँखों के आगे अंधेरा छा गया और उन्हें कुछ भी दिखाई न देने लगा वे जिधर जाते उधर ही उनका पत्थरों से सिर टकराता। पत्थरों की चोटें खाकर उनके सबके सिरों से खून बहने लगा। इस प्रकार निकलने का प्रयत्न करते हुए रात गुजर गई। सुबह वे सब पकड़ लिये गये।

5. जीरापल्ली स्तोत्र के रचयिता आचार्य मेरुतुङ्गसूरि जब वृद्धावस्था के कारण क्षीणबल हो गये तब उन्होंने जीरावला की ओर जाते हुए एक संघ के साथ ये तीन श्लोक लिखकर भेजे -

   1. **जीरापल्ली पार्श्व यक्षेण सेवितम्।**
   अर्चितं धरणेन्द्रेन पद्मावत्या प्रपूजितम्।।1।।

   2. **सर्व मन्त्रमयं सर्वकार्य सिद्धिकरं परम्।**
   ध्यायामि हृदयाम्भोजे भूत प्रेत प्रणाशकम्।।2।।

   3. **श्री मेरुतुङ्गसूरीन्द्रः श्रीमत्पार्श्व प्रभोः पुरः।**
   ध्यानस्थितं हृदि ध्यायन् सर्वसिद्धिं लभे ध्रुवम्।।3।।

संघपति ने जब उन तीनों श्लोकों को भगवान के सामने रखा तो अधिष्ठायक देव ने संघ की शांति के लिये सात गुटिकायें प्रदान की एवं यह निर्देश दिया कि आवश्यकता पड़ने पर इन गुटिकाओं का प्रयोग करें।

6. लोलपाटक (लालाड़ा) नगर में सर्प के उपसर्ग होने से मेरुतुङ्गसूरिजी ने जीरावला पार्श्वनाथ महामंत्र यंत्र से गर्भित स्तोत्र की रचना की, जिससे सर्प का विष अमृत हो गया।
7. संवत् 1886 में मगसर वदी 11 के दिन बड़ौदा में आचार्य शान्तिसूरि को स्वप्न में भगवान ने प्रकट होने का कहा। शान्तिसूरिजी के कहने से सेठ ने जमीन खोदकर भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्राप्त की। इस प्रतिमा को सर्व कल्याणकारिणी होने के कारण कल्याण पार्श्वनाथ के नाम से बड़ौदा में मामा की पोल में प्रतिष्ठित किया गया है।

ये थोड़े से महत्त्वपूर्ण प्रसंग आपके सामने रखे हैं। यदि आस्था रखें तो आप भी चमत्कृत हो जायेंगे।

जीरापल्ली पार्श्वनाथ तीर्थ का प्रबन्ध...
(1)

[1]वि. सं. 1503 के पं. सोमदर्मगणि द्वारा रचित उपदेश सप्तति में जीरापल्ली-पार्श्वजिन संबंध में बताया है कि -

'जीरिकापल्ली पुरीरूपी सुंदरी के कंठ-स्थल में जो हार की तुलना को धारण करते हैं, उन पार्श्वजिन को प्रणाम करके उनके तीर्थ-संबंध की कथा जिस तरह सुनी है, उसी तरह प्रकाशित करने में आया है (किया जा रहा है)-

पहले वि. सं. 1109 (90)[2] वर्ष में, बहुत से जैन प्रासादों और शैव प्रासादों से सुशोभित सुंदर ब्राह्मण (बर्माण, सिरोही-राज्य) नाम के महास्थान में थे....

धांधल[3] नाम का धनाढ्य श्रेष्ठ श्रावक हो गया था। वहाँ गर्व-रहित सरल भद्रिक एक वृद्धा (बुढ़िया) रहती थी। उसकी एक गाय हमेशा सेहिली नदी के पास देवीश्री गिरि[4] की गुफा में दूध की धारा बहाती थी, और शाम के समय जब घर आती तब बिल्कुल दूध नहीं देती थी। उस बुढ़िया ने कुछ दिनों के पश्चात् परंपरा से उस स्थान को जाना। उसने धांधल वगैरह पुरुषों के पास जाकर इस वृत्तांत की जानकारी दी। उन श्रेष्ठियों ने विचार किया कि- वह स्थान प्रभावक होना चाहिये। वे सभी श्रेष्ठी इकट्ठे होकर पवित्र होकर रात्रि में पंचनमस्कार (मंत्र) का स्मरण करके पवित्र स्थान में सो गये; तब स्वप्न में नील घोड़े पर सवार होकर कोई सुंदर पुरुष ने उनके सामने पवित्र वचन कहा कि - ' गाय जहाँ पर दूध बहाती है, वहाँ

---

1. 'उपदेशसप्रतिरियं रूचिरा गुण-बिन्दु-बाण-चन्द्र (1503) मिते 1 वर्षे तेन प्रथिता कृतार्थनीयाऽपि (वि) बुधधुर्यैः।'
2. 'श्रीजीरिकापल्लि-पुरी-नितम्बिना-कण्ठस्थले हास्तुलां दधातियः। प्रणम्य तं पार्श्वजिन प्रकाश्यते ततीर्थसम्बन्ध कथा यथाश्रुतम्।। पुरा नन्दाभ्रेश 1109 (1190) सङ्ख्ये वर्षे ब्रह्माण नामनि'
3. जिनप्रभसूरि द्वारा रचित फलवृद्धि-पार्श्वनाथ के कल्प में, फलोदी में रहने वाले श्रीमालवंश के विक्रम की बारहवीं सदी के चौथे चरण में विद्यमान धंधल श्रावक की एक गाय इस तरह दूध की धारा बहाती, और उस श्रावक को आये हुए स्वप्न की हकीकत बताई है। मुनिसुंदरसूरि ने फलवृद्धि पार्श्वनाथ स्तोत्र (जैन स्तोत्र संग्रह य. वि. ग्रं. भा-2, पृष्ठ-84, श्लोक 5) में भी इस तरह धांधल नाम का सूचन किया है।
4. मुनि ज्ञानविजयजी के **'जैन तीर्थोंना इतिहास'** (सं. 1981 में ए. एम. एण्ड कां. पालीताणा से प्र.पृ. 65) में जो बताया है उसमें देवी श्रीगिरि की जगह नदी बताई है, जवालिपुर (जालोर) को जावाल बताया हुआ है। उस तरफ से आये हुए यवनों के सैन्य के बदले वहाँ के शीख बताये हैं। लापसी की जगह चंदन बताया है, परंतु उपदेश सप्तति में बताये हुए उपर्युक्त प्रबंध में से ऐसा आशय निकल नहीं सकता। वहाँ यवनों के गुरु को शेख शब्द द्वारा पहचाना गया है, तथा सहि में संस्कृत साहित्य में साखि शब्द द्वारा सूचित किया हुआ माना जाता है।

पार्श्वनाथ की मूर्ति बिराजी हुई है, उनका अधिष्ठायक मैं हूँ, जिस तरह उनकी पूजा हो सके, वैसे तुम करो।' ऐसा कहकर वह देव अदृश्य हो गया। सवेरे वे लोग वहाँ गये। भूमि के खुदवाने पर प्रकट हुई उस मूर्ति को उन लोगों ने रथ में स्थापित किया, इतने में जीरापल्लीपुरी के लोग वहाँ आये, उन्होंने कहा कि 'आपका यहाँ अस्थाने यह क्यों आग्रह है ? हमारी सीमा (हद) में रहे हुए यह बिंब, आप कैसे ले जा सकते हैं।' इस तरह विवाद होने पर वृद्धों ने कहा कि - 'एक बैल तुम्हारा और एक बैल हमारा इस मूर्ति वाले रथ को जोड़ने में आये, ये दोनों जहाँ ले जाए वहाँ देव अपनी इच्छानुसार जाएं। कर्म-बंध के हेतु विवाद की क्या जरूरत है?' यह सलाह-ठराव स्वीकार करके उसी तरह करने पर वह बिंब जीरापल्ली में आया, तब महाजनों ने महान प्रवेशोत्सव किया था। संघ ने सब की अनुमति-पूर्वक पहले वहाँ चैत्य में रहे हुए वीर के बिंब को उत्थापित करके उनको (प्रकट हुए पार्श्वनाथ-बिम्ब) को ही मुख्य तरीके स्थापित किया था। अनेक तरह के अभिग्रह लेकर अनेक संघ वहाँ आते हैं, उनकी अभिलाषाएं उनके अधिष्ठायक द्वारा पूर्ण करने में आती है। इस तरह वह तीर्थ बना।

सर्व श्रेष्ठियों में धुरंधर धांधल सेठ देव-द्रव्य की संभाल, देखरेख तथा सुचारु रूप से व्यवस्था करते थे।

एक बार वहाँ पर जावालिपुर (जालोर) तरफ से यवनों[1] का सैन्य आया था, उनको देव ने घोड़े पर सवार होकर भगाया था। सैन्य में से मुनि के वेष को धारण करने वाले उन यवनों के गुरु सात शेखों ने खून की बोतलें भर कर वहाँ आये थे। देव की स्तुति का बहाना लेकर वे देव-मंदिर में रहे थे। उन्होंने रात को खून के छींटे डालकर मूर्ति को खंडित किया था। 'खून के स्पर्श होते ही देवों की प्रभा चली जाती है' ऐसी शास्त्र की वाणी है। वे पापी लोग तुरंत ही भाग गये। क्योंकि उनका चित्त स्वस्थ नहीं रह सकता। उनका किया हुआ अयोग्य कर्म जब सवेरे जानने में आया, तब धांधल वगैरह के हृदय को काफी ठेंस पहुँची। वहाँ के राजाओं ने भटों को भेजकर उन सात दुष्ट शेखों को मार डाला और सेना अपने नगर में गई।

उपवास करने वाले अपने अधिकारी (गोष्ठी-देखरेख करने वाले) को देव ने

1. 'जीरापल्ली मंडन-पार्श्वनाथ-विनति' नाम की 11 कड़ी की एक पद्यकृति की एक प्राचीन प्रति है, उसमें वि. सं. 1368 में यह असुर-दल को जीता बतालाया तथा प्रभु-प्रभाव से यह उपद्रव टल गया। ऐसा बताया गया है।

कहा 'खेद मत कर, निर्दय पर, इन 9 (नौ) भागों को इकट्ठा करके तूं जल्दी नौ सेर प्रमाण लापशी में डाल; सात दिन तक दोनों दरवाजे बन्द कर दे।' देव के ऐसे वचन को सुनकर के उस गोष्ठिक - अधिकारी ने उसी हिसाब से सब किया। इतने में सातवें दिन एक संघ आया, उत्सुकता से दरवाजा खोला तो उस मूर्ति पर दृष्टि पड़ी, इससे कुछ नहीं जुड़े हुए अवयवों वाली मूर्ति को लोगों ने देखा। क्योंकि उस मूर्ति के अंग पर अभी भी नौ खंड स्पष्टता से दिखाई देते थे।

इस तरफ अपने नगर में पहुँचते ही उन यवनों (शेखों) के घर जलने लगे, द्रव्य का विनाश हुआ। ये सब देव ने किया (का किया हुआ) ऐसा जानकर भयभीत होकर राजा ने अपने मंत्री को वहाँ भेजा, देव ने (मंत्री) स्वप्न में कहा कि -'यदि यह राजा यहाँ आकर के अपना सिर मुण्डाए, तभी नगर का और राजा का कुशल होगा।' उसी तरह करने से तथा अनेक भोग-योग करवाने से तथा अनेक प्रकार की प्रभावना करने से राजा समाधिमान् तथा सुखी हुआ। दूसरे भी उसी तरह से अपना सिर मुंडाना इत्यादि करने लगे, इसका कारण यह है कि लोग प्रायः गतानुगतिक दिखाई देते हैं।

इस तरह उत्तरोत्तर बढ़ते हुए महत्त्व (माहात्म्य) से सुशोभित ऐसे इस तीर्थ में देव ने एक बार अपने अधिकारी मनुष्य को स्वप्न में कहा कि-'मेरे नाम से ही देव की दूसरी मूर्ति की स्थापना करो, कारण कि खंडित अंग वाली मूर्ति मुख्य स्थान में शोभायमान नहीं लगती।' उसके बाद श्री पार्श्वनाथ की नई मूर्ति की स्थापना की जो आज भी (ग्रंथकार के समय में - विक्रम की 16 वीं सदी के प्रारंभ में भी) दोनों लोक में (इस लोक में और परलोक) फल की अभिलाषा वाले मनुष्यों द्वारा पूजी जाती है। प्राचीन प्रतीमा को उसके बाई (जमणी) तरफ स्थापित की थी, जिसको नमस्कार, ध्वज-पूजा वगैरह पहले किया जाता था, जीर्ण होने के कारण 'दादा-पार्श्वनाथ' ऐसे नाम से कहे जाते थे। इनके सामने प्रायः मुण्डन वगैरह किया जाता है। 'धांधल के संतान में यह सीहड 14 वां गोष्ठिक हुआ था।' ऐसा पूर्व के स्थविरों ने कहा है। जीरापल्ली का यह प्रबंध, जिस तरह से सुना, उसी तरह से मैंने किया है। हृदय में माध्यस्थ्य भाव रखकर बहुश्रुत (ज्ञानी) जनों उसको अवधारण[1] करें।'

1. 'जीरापल्ली - प्रबन्धोऽयं मया चक्रे यताश्रुतम्।
हृदि माध्यस्थ्यमास्थायावधार्यश्च बहुश्रुतैः।।'
- उपदेश सप्तति (आ. सभा अधि. 2, आ. 6, श्वे. 40)

(2)

विक्रम की 15वीं सदी में विद्यमान विधिपक्ष (अंचल-गच्छ) के नायक मेरुतुङ्गसूरि द्वारा रचित 'ॐ नमो देवदेवाय' प्रारंभ वाले जीरिकापल्लि-पार्श्व-स्तवन की सुबोधिका टीका, वाचक पुण्यसागरजी ने वि. सं. 1725 में श्रीमाल नगर में रचना[1] की थी। व्याख्यान शुरु करते समय उन्होंने जीरापल्ली-तीर्थ की और स्तवन की उत्पत्ति के संबंध में बताया है कि – 'श्रीपार्श्व जिन के निर्वाण के बाद शुभ नाम के प्रथम गणधर विहार करते मरुदेश में अर्बुदाचल (आबू) तीर्थ के पास में, रत्नपुर नामक नगर में पधारे थे। वहाँ पर मिथ्यादृष्टि होने पर भी भद्रिका (सरल) आशयवाला, चंद्र जैसे उज्जवल यश को प्राप्त चंद्रयशा राजा राज्य करता था। उसने धर्म की परीक्षा के लिए अनेक धर्म मतावलियों को पूछा था, परन्तु कहीं भी मन को चमत्कारित करे ऐसा धर्म प्राप्त नहीं किया। उसी समय गणधर देव का आगमन सुनकर उसने सोचा कि –'ये भी महात्माजी कहे जाते हैं, उनको भी हमें पूछना चाहिए।' ऐसा सोचकर वह गणधर देव के पास में आया, नमस्कार करके बैठा। उसने धर्म पूछा। भगवंत ने भी जिनोपदिष्ट धर्म का उपदेश दिया उसको सुनकर राजा ऐसा हर्षित हुआ जिस प्रकार खजाने के दर्शन से दरिद्र को अत्यंत खुशी होती है। हर्षित होकर राजा ने जैन धर्म को स्वीकार किया। उसके बाद पार्श्वजिन के संगत अर्थवाद को गणधर देव के मुख से सुनकर के श्री पार्श्वनाथ प्रभु को वंदन नहीं कर सके इसलिए दुःखित (विषाद) होते राजा ने गणधर के उपदेश से साक्षात् श्री पार्श्वनाथ जिन के वंदन की फल-प्राप्ति के लिए श्री पार्श्वजिन का बिंब कराया; संघ ने उसको प्रतिष्ठित किया। उसके सामने अट्ठम् तप (तीन दिन के उपवास) करके गणधरदेव की आज्ञा (आम्नाय) अनुसार त्रैलोक्यविजय यंत्र का जाप करके उसने साक्षात् पार्श्वजिन के वंदन का फल प्राप्त किया था। उसके बाद राजा लंबे समय तक धर्म की आराधना करके अन्त समय समाधि-पूर्वक स्वर्ग को प्राप्त किया। उसके बाद कई कारणों से उस प्रतिमा को भूमि में निधिरूप-अदृश्य-गुप्त की थी।

उसके बाद काफी समय गुजर जाने के पश्चात् वि. सं. 1109(90) वर्ष में

---

1. 'तद्गुरुणां प्रसादाच्च पुण्यसागर वाचकैः।
पार्श्वनाथस्तवस्येयं कृता टीका सुबोधिका।।6।।
अक्षाक्ष्यश्व-क्षितिमित 1725 वर्षे मासेऽथ भाद्रपदसंज्ञे।
शुक्लक्षेऽष्टम्यां श्री श्रीमालाभिधे नगरे।।7।।
इति श्री जीरापल्लि पार्श्व स्तोत्रस्य टीका।'
– वडोदरा-प्राच्यविद्यामंदिरनी वि. सं. 1779मा लखायेल प्रति।

जीरिकापल्लि (जीरावली) गाँव में श्रीमद् अर्हच्छासन की उपासन वासना से वासित अंतःकरणवाला, सद्धर्म-कर्म के मर्मज्ञ, उज्जवल कीर्तिरूपी गंगा को प्रकट करने में हिमालय जैसे सा. धांधू नाम के सुश्रावक, रात्रि में धरणेन्द्र ने बतलाये स्वप्न के प्रभाव से उस प्रतिमा को साहोली नदी में जानकर सवेरे बड़े महोत्सव-पूर्वक चतुर्विध संघ के साथ में भगवंत की प्रतिमा को जीरापल्लि (जीरावली) गाँव में ले गये और वहाँ पर प्रासाद कराया। उसमें स्थापित की हुई प्रतिमा पुण्यपात्रों द्वारा शुद्ध वस्त्रों को धारण करके पूजी जाती, तब से 'जीरापल्लि पार्श्वनाथ' ऐसे नाम से लोक में प्रसिद्ध हो गई थी।[1]'

वढिआर देश में लोलपाटक (लोलाड़ा) नगर में सर्प का उपसर्ग होने पर विधिपक्ष गच्छ के अधिराज युग-प्रधान श्रीमेरुतुङ्गसूरि ने इष्टदेव श्री जीरापल्लि

---

1. 'श्री पार्श्व जीरिकापल्लि-प्रभुं नत्वा जिनेश्वरम्।
श्रीमत् पार्श्वस्तवस्यादं कुर्वे व्याख्यां यथामति।।[1]
तत्र तावच्छ्री जीरिकापल्लि तीर्थस्य, स्तवस्य चोत्पत्तिर्लिख्यते xx
ततः कुतश्चित् कारणात् सा प्रतिमा भूमौ निधीकृता ततश्च कियतिकाले गते विक्रमराज्यान्नन्दाभ्र - चन्द्र-शशि-प्रमिते 1109(90) श्री जीरिकापल्लि ग्रामे श्रमदृच्छासनोपसनवासना-वासितान्तः सद्धर्धकर्ममर्मज्ञेनावदात कीर्तित्रिपथगा-वगाप्रकटनादिमवद्धरणीदरेण सा धांधूनाम्ना सुश्रावकेण रात्रौ धरणेन्द्र-दर्शित-स्वप्न प्रभावात् साहोली नदी मध्ये तां प्रतिमां ज्ञात्वा प्रातर्महामहः पूर्व चतुर्विधश्रीसङ्घेन सार्थं श्री भगवत्प्रतिमा श्री जीरापल्लिग्रामं नीता, कारितश्च प्रासादस्तत्र संस्थाप्य पूजिता पुण्यपात्रैः शुद्धगात्रैः। ततश्च 'जीरापल्लि-पार्श्वनाथ' इति लोक प्रसिद्धिर्जाता।'

---

1. 'अथ च युगप्रधान श्री विधिपक्षगच्छाधिराज श्री मेरुतुङ्गसूरिभिः श्री वढिआरदेश लोलपाटक नगरे सर्वोपसर्गे जाते इष्टदेवस्य श्री जीरापल्लिपार्श्वनाथस्य भगवतस्त्रैलोक्यविजय नाममहामन्त्र यन्त्रगर्भ स्तोत्रं कृतं तत्प्रभावाद् विषममृतं जातम्।
इति श्री जीरिकापल्लिप्रभोर्मूलस्तोत्रस्य पञ्जिका।'

अय चेतन्यहास्तोत्र करणानन्तरं कतिचिद् दिनैः परमगुरुभिः श्रामन् मेरुतुङ्गसूरिभिरेव क्षीणजङ्घबलैः श्री जीरापल्लिपार्श्व प्रति चलितसङ्घेन सार्धं कस्याचितं सुश्रावकस्य, हस्तेन भगवत्-स्तुतिमयं समर्हिमं पत्रिकायां लिकित्वा प्रेषितं कथितं च श्राद्धस्य यद् भगवतोऽग्रे इयमस्मत्प्रणति-रूपा पत्रिका मोच्येति। ततो गतस्तत्र सङ्घेन सार्धं श्राद्धो मुक्ता च भवतोऽये पत्रिका। ततश्च भगवदधिष्ठायकदेवेन श्रीसङ्घे प्रत्यूदोपशान्तिविधानार्थं गुटिका सप्तकं दत्तं कथितं च गुरवे देयं ते नाप्यानीय गुरवे समर्पिताः सप्त गुटिकाः। तत्प्रभावात् सङ्घे विशेषतः ऋद्धि-वृद्धि जाते इति तत् श्लोत्रयं च सप्रस्मरण महास्तोत्रे÷वसौवन्महास्तोत्रस्य प्रान्ते पयेते-

'जीरापल्लिप्रभुं पार्श्व पार्श्वयक्षेण सेवितम्।
अर्चितं धरणेन्द्रेण पद्मावत्या प्रपूजितम्।।1।।
सर्वमन्त्रमयं सर्वकार्यसिद्धिकरं परम्।
ध्यायामि हृदयाम्भोजे भूत-प्रेतप्रणा शकम्।।2।।
श्रीमेरुतुङ्गसूरीन्द्रः श्रीमत्पार्श्वप्रभौः पुरः।
ध्यानस्थित हृदि ध्यायन् सर्वसिद्धिं लभे ध्रुवम्।।3।।'

पार्श्वनाथ भगवंत का 'त्रलोक्य विजय' नाम के महामंत्र-यंत्र से गर्भित स्तोत्र निर्मित किया, जिसके प्रभाव से विष अमृत हो गया।

इस स्तोत्र की पंजिका-व्याख्या के अंत में उन व्याख्याकार ने बताया है कि - 'इस महास्तोत्र के करने के बाद थोड़े समय में परमगुरु मेरुतुंङ्गसूरि क्षीणजंघा-बलवाले होने के कारण जीरापल्लि पार्श्व की तरफ चलते संघ के साथ के कोई सुश्रावक के साथ भगवंत की महिमा-स्तुतिरूप तीन श्लोक पत्रिका में लिखकर भेजा था और श्रावक को कहा था कि - 'भगवान के सामने हमारी प्रणति रूप पत्रिका रख देना।' उसके बाद संघ के साथ में श्रावक वहाँ गया था और उसने भगवान के आगे पत्रिका रख दी थी। इसलिये भगवान के अधिष्ठायक देव ने श्रीसंघ में विघ्नों के उपशांत के लिये 7 गुटिकाएँ दी थी। और कहा था कि -' ये गुटिकाएँ गुरु को देना।' उसने भी आकर ये गुटिकाएँ गुरु को समर्पित कर दीथी। उसके प्रभाव से संघ में विशेष प्रकार से ऋद्धि-वृद्धि हुई थी। इसलिये इन तीन (3) श्लोकों का भी सात (7) स्मरणों (अंचलगच्छ में पठन-पाठन किये जाने वाले) में से इस महास्तोत्र के अंत में पठन करने में आता है।

(3)

'तेहवई श्रीमरुदेसी जीराउली-तीर्थनी उत्पत्ति हुई, आबू नी पासिं जीराउली-गामई धोसिरगोत्रि श्रे. श्री धांधल रहै छइं. तेहनी गौ सेहली-नदीनई कांठइं वोरडीनी जाल मांही सीमाडे जाई छे- तिहां दूध जरईं संध्या-समयरं ते गौ वणिक-घरै दूध न दीइं, तिवारइं ते धांधल गृहस्था जाणईं जे कोई सीमईं दोहीने दूध लीइ छै. तेहनी भ्रान्ति तेणे संघाते पुत्र ने मोकल्यो जिहां गौ चरई तिहां पृथ्वीनईं ठिकांणि दूध छरी गई ते देखी पुत्र घरे आवी दूध-झरण वात पिता प्रति कही. तिणईं धांधलई आश्चर्य जाणी ते दूध-झरण-भूमि का खणी। एतलईं घणा कालनी श्री पास-मूर्ति प्रगट हुई। एतलई अधिष्ठायकै स्वप्न दीधो-ते मुझने जीराउल्ली नगरईं थाप्यो. तिवारईं धांधलई प्रासाद नीपजावी महोत्सवे वि. सं. 1191 वर्षिं श्री पार्श्व ने प्रासादे थाप्या। श्रीअजितदेवसूरिईं प्रतिष्ठ्या। घणा दिन ताईं श्री पार्श्वनाथनी भक्ति साचवतो श्रे. धांधल सद्‌गति नो भजनारो हुओ। ते श्री पार्श्व परमेश्वर जे जीरापल्ली नगरईं रह्या। सकल भक्ति लोकनी वांछापूरक मारि-उपद्रव-निवारक सप्रभाव तीर्थ हुओ, यतः-

'प्रबलेऽपि कलिकाले स्मृतमपि यन्नाम हरति दुरितानि।

कामिताफतानिं कुरुते स जयति जीराउलीपार्श्वः।।

इणिपरि श्री जीराउल्लीपार्श्व - उत्पत्ति।

पुनः वि. सं. 1191 वर्षिं दील्लीनगरे विल्हाती पठांण आव्या, चहूआण नई काढ्या, म्लेच्वाण हुआ.'

1. वि. सं. 1806 वर्ष पर्यन्त के वर्णन वाली सुविदित तपागच्छ पट्टधरनाम की वीर-वंशावली, जो जैन साहित्य संशोधक (खंड-1, अं. 3सरे के परिशिष्ट) में सं. 1962 की ह. लि. नकल पर से श्रीयुत जिनविजयजी द्वारा संपादित हुई है। उसमें वि. सं. 1191 के साथ में अजितदेवसूरि के समय की यह घटना पृष्ठ 31 में बताई है।

मिशन जैनत्व जागरण द्वारा प्रसारित साहित्य

भूषण शाह द्वारा लिखित/संपादित हिन्दी पुस्तक

	मूल्य		मूल्य
1. जैनागम सिद्ध मूर्तिपूजा	100/-	8. अकबर प्रतिबोधक कौन?	50/-
2. जैनत्व जागरण	200/-	9. इतिहास गवाह है।	30/-
3. जागे रे जैन संघ	30/-	10. तपागच्छ इतिहास	100/-
4. पाकिस्तान में जैन मंदिर	100/-	11. सांच को आंच नहीं	100/-
5. पल्लीवाल जैन इतिहास	100/-	12. आगम प्रश्नोत्तरी	20/-
6. दिगंबर संप्रदाय एक अध्ययन	100/-	13. जगजयवंत जीरावला	100/-
7. श्रीमहाकालिका कल्प एवं प्राचिन तीर्थ पावागढ़	100/-		

भूषण शाह द्वारा लिखित/संपादित गुजराती पुस्तक

૧. મંત્રં સંસાર સારં	૨૦૦/-	૪. ઘંટનાદ	
૨. જંબૂ જિનાલય શુદ્ધિકરણ	૩૦/-	5. अनुपमंडल और हमारा संघ	
૩. જાગે રે જૈન સંઘ	૨૦/-		

भूषण शाह द्वारा संपादित अंग्रेजी पुस्तक

1. Lights	300/-	2. History of Jainism	300/-

डॉ. प्रीतमबेन सिंघवी द्वारा लिखिक/संपादित

	मूल्य		मूल्य
1. समत्वयोग (1996)	100/-	8. हिन्दी जैन साहित्य में कृष्ण का स्वरूप (1992)	100/-
2. अनेकांतवाद (1999)	100/-	9. दोहा पाहुडं (1999)	50/-
3. अणुपेहा (2001)	100/-	10. बाराक्खर कवक (1997)	50/-
4. आणंदा (1999)	50/-	11. प्रभुवीर का अंतिम संदेश(2000)	50/-
5. सदयवत्स कथानकम् (1999)	50/-	12. दोहाणुपेहा (संपादित-1998)	50/-
6. संप्रतिनृप चरित्रम् (1999)	50/-	13. तरंगवती (1999)	50/-
7. दान एक अमृतमयी परंपरा (2012)	310/-	૧૪. નંદાવર્ત નું નંદનવન (૨૦૦૩)	50/-

डॉ. प्रीतमबेन सिंघवी द्वारा अनुवादित

1. संवेदन की सरगम (2007)	50/-	5. आत्मकथाएँ (संपादित) (2013)	50/-
2. संवेदन की सुवास (2008)	50/-	6. शासन सम्राट(जीवन परिचय) 1999	50/-
3. संवेदन की झलक (2008)	50/-	7. विद्युत सजीव या निर्जीव (1999)	50/-
4. संवेदन की मस्ती (2007)	50/-		

मिशन जैनत्व जागरण द्वारा प्रसारित साहित्य

प. पू. मुनिराज ज्ञानसुंदरजी म.सा. द्वारा लिखीत साहित्य

		मूल्य
1.	मूर्तिपूजा का प्राचिन इतिहास	100/-
2.	श्रीमान् लोंकाशाह	100/-
3.	हाँ ! मूर्तिपूजा शास्त्रोक्त है	30/-
4.	उन्मार्ग छोड़िए... सन्मार्ग भजीए	20/-
5.	जड़पूजा या गुण पूजा	20/-
6.	क्या धर्म में हिंसा दोषाव्ह है	50/-
7.	पुनर्जन्म	50/-

अन्य साहित्य

		मूल्य
1.	नवयुग निर्माता (पुनः प्रकाशन)	200/-
2.	मूर्तिपूजा (गुजराती-खुबचंदजी पंडित)	50/-
3.	लोंकाशाह और स्थानकवासी (पू. कल्याण वि. म.)	
4.	हमारे गुरुदेव (पू. जंबूविजयजी म.सा. का जीवन)	
5.	सफलता का रहस्य - सा. नंदीयशाश्रीजी म.सा.	20/-

चल रहे कार्य

1. जैन इतिहास (श्री आदिनाथ परमात्मा से अभि तक)
2. सूरि मंत्र कल्प

॥ जैन शासन–जैनागम जयकारा॥

संपादित ग्रंथों की सूचि : (प्रकाशनाधीन)

– देवलोक से दिव्य सानिध्य –

प. पू. गुरुदेव श्री जंबूविजयजी महाराज

– मार्गदर्शन –

डॉ. प्रीतमबेन सिंघवी

– प्रेरणा –

हेरत प्रमोदभाई मणीयार

– संकलन – संशोधन – संपादन –

भूषण नविनचंद्र शाह (जम्बू शिशु)

– प्रकाशक –

मिशन जैनत्व जागरण, चंद्रोदय परिवार, श्री पार्श्व इंटरनेशनल

संपादित ग्रंथों की सूचि :

1. जैन दर्शन का रहस्य
2. जहाँ नमस्कार–वहाँ चमत्कार
3. श्री सराक जैन इतिहास
4. जैन दर्शन में अष्टांग निमित्त भाग 1,4,5 (साथ में)
5. जैन दर्शन में अष्टांग निमित्त भाग 2,3 (साथ में)
6. जैन स्तोत्र संग्रह
7. जैन नगरी तारातंबोल – एक रहस्य
8. Research on Jainism
9. मिशन जैनत्व जागरण और मेरे विचार

10. जैन ग्रंथ- नयचक्रसार
11. प्राचीन जैन पूजा विधि- एक अध्ययन
12. जैनत्व जागरण की शौर्य कथाएँ
13. जैनागम अंश
14. जैन शासन का मुगल काल और मुगल फरमान
15. जैन योग और ध्यान
16. जैन स्मारकों के प्राचिन अंश
17. યુગ યુગમાં ભળજો જૈન શાસન (ગુજરાતી)
18. मंत्र संसार सारं (भाग -2) (पुनः प्रकाशन)
19. मंत्र संसार सारं (भाग -3) (पुनः प्रकाशन)
20. मंत्र संसार सारं (भाग -4) (पुनः प्रकाशन)
21. मंत्र संसार सारं (भाग -5) (पुनः प्रकाशन)
22. શ્રુત રત્નાકર (પ.પૂ. ગુરૂદેવશ્રીનો સ્મૃતિ ગ્રંથ)
23. प्राचिन जैन स्मारकों का रहस्य
24. जैन दर्शन - अध्ययन एवं चिंतन
25. जैन मंदिर शुद्धिकरण
26. सूरिमंत्र कल्प संग्रह
27. जैनत्व जागरण - 2
28. जैनत्व जागरण - 3
29. जैनागम सिद्ध मूर्तिपूजा (भाग-2)
30. जैनदेवी महालक्ष्मी-मंत्रकल्प
31. जैन सम्राट संप्रति - एक अध्ययन
32. जैन आराधना विधि संग्रह
૩૩. જૈન ધર્મનો ભવ્ય ભૂતકાળ (ભાગ-૧, ગુજરાતી)
૩૪. જૈન ધર્મનો ભવ્ય ભૂતકાળ (ભાગ-૨, ગુજરાતી)
૩૫. જૈન ધર્મનો ભવ્ય ભૂતકાળ (ભાગ-૩, ગુજરાતી)
૩૬. જૈન ધર્મનો ભવ્ય ભૂતકાળ (ભાગ-૪, ગુજરાતી)
૩૭. જૈન ધર્મનો ભવ્ય ભૂતકાળ (ભાગ-૫, ગુજરાતી)
38. सम्मेतशिखर महात्म्य सार
39. जैन इतिहास (पूर्व भूमिका) (मूल इतिहास विभिन्न खंडों में प्रकाशित होगा।)

40. 'पुनर्जन्म'
41. જંબૂ શ્રુત એન્સાયક્લોપિડિયા (પૂ. ગુરૂદેવશ્રી ને સમર્પિત શ્રુત પુષ્પ)
42. दिगंबर जैन संघ (एक संशोधनात्मक अध्ययन)
43. जैन धर्म और स्वराज्य
44. ચંદ્રોદય (પૂ. સા. ચંદ્રોદયાશ્રીજી મ.સા. નું જીવનકવન)
45. जैन श्राविका शान्तला
46. પૂ. બાપજી મહારાજ (સંઘસ્થવીર આ. ભ. સિદ્ધિસૂરિજી મ.સા.નું ચરિત્ર)
47. મારા ગુરૂદેવ (પૂ. જંબૂવિજયજી મ.સા. નું સંક્ષિપ્ત જીવન દર્શન)
48. જૈન દર્શન અને મારા વિચાર
49. श्री भद्रबाहु संहिता - (आ. भद्रबाहु स्वामी द्वारा निमित ज्ञान प्रकरण)
50. પ્રશસ્તિ સંગ્રહ (પ. પૂ. ગુરૂદેવ જંબૂવિજયજી મ.સા. દ્વારા લખાયેલી પ્રશસ્તિ-પ્રસ્તાવના સંગ્રહ)
51. ગુરૂમૂર્તિ-દેવીદેવતા મૂર્તિ અંગે વિચારણા...

जहा है गुरु की महेर...
वहा लीला लहेर है...

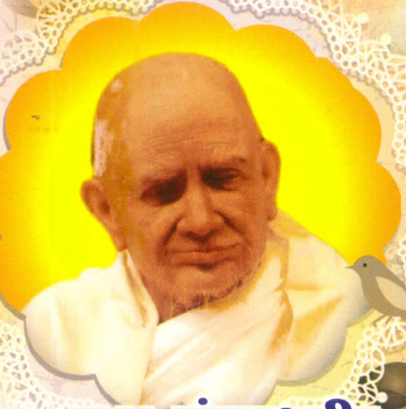

प.पू. संघ स्थवीर

आ.भ. सिद्धिसूरिजी म.सा.

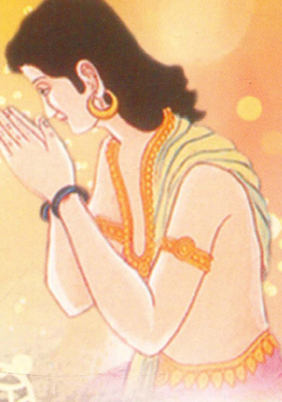

पट्टालंकार प.पू. आगमप्रज्ञ

गुरुदेव जंबूविजयजी म.सा.

आपश्री के परमसान्निध्य ने मुझे
जीरावला दादा से जुड़ने का अवसर दिया...
आपश्री के परमसान्निध्य ने मुझे
नई राह दिखाई...
आपश्री के परमसान्निध्य में मुझे
चौथे आरे का एहसास हुआ...

Print: Deepak Oswal, Pune
Ph: 24477791, 9822055891